तरंगवती

लुप्त हुई पादलिप्ताचार्यकृत प्राकृत तरंगवतीकथा का
एक प्राचीन संक्षेप तरंगलोला का अनुवाद

अनुवादकर्ता : प्रीतम सिंघवी

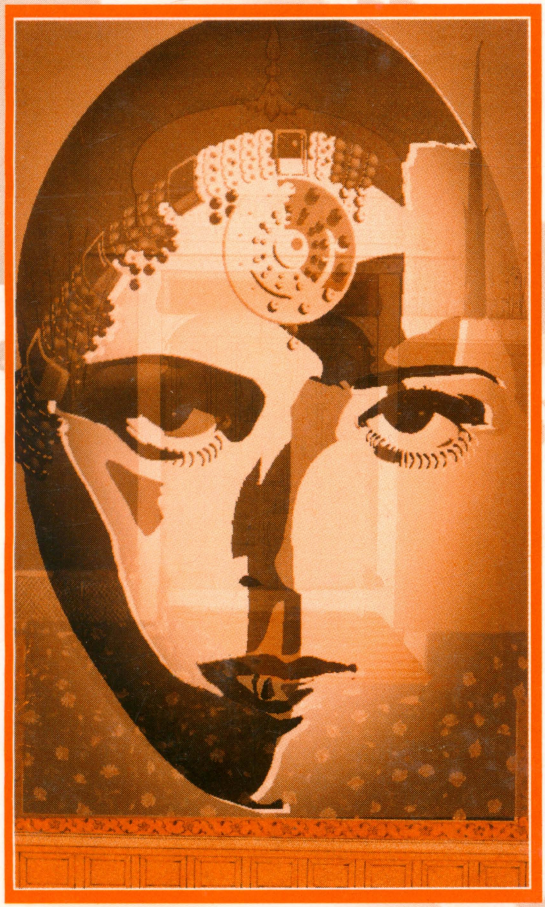

प्रकाशक
पार्श्व इन्टरनेशनल शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान
अहमदाबाद

तरंगवती

लुप्त हुई पादलिप्ताचार्यकृत प्राकृत तरंगवतीकथा
का एक प्राचीन संक्षेप तरंगलोला का अनुवाद

हरिवल्लभ भायाणी के गुजराती अनुवाद से हिंदी अनुवाद

अनुवादकर्ता
प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक
पार्श्व इन्टरनेशनल शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान
अहमदाबाद
१९९९

Taraṁgavati of Pādaliptācārya
Hindi Translation by Pritam Singhvi
based on the Gujarati translation of H. C. Bhayani

Price : 85-00

Publisher :
Dr. S. S. Singhvi
Managing Trustee
Pārśva International Educational and Research Foundation,
4-A, Ramya Apartment, opp. Ketav Petrol Pump,
Polytechnic, Ambawadi, Ahmedabad-380015
Phone : 6302998, 6749220

प्रप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोल, अहमदाबाद-३८०००१
फोन : ५३५६६९२

Printed by : Krishna Graphics
Kirit Harjibhai Patel
966, Naranpura old Village,
Amhedabad-380013
Phone : 7494393

समर्पण

परम पूज्य महाराजश्री

विजयप्रद्युम्नसूरिजी को,

विजयशीलचन्द्रसूरिजी को

सवंदन समर्पित

सीसं कहवि न फुट्टं जमस्स पालित्तं हरंतस्स ।
जस्स मुह-निज्झकराओ तरंगलोला नई वूढा ॥

चक्काय-जुथल-सुहाया, रम्मत्तण-राय-हंस-कय-हरिसा ।
जस्स कुल पव्वयस्स व, वियरइ गंगा तरंगवई ॥

उद्द्योतनसूरि

'जिसके मुखनिर्झर से 'तरंगलोला' नदी बही, उन पादलिप्त को उठा जानेवाले यमराज का मस्तिष्क फट क्यों न गया ?'

'चक्रवाक-युगल से शोभती, "राजहंसो"को प्रमुदित करती "तरंगवती", हिमालय से प्रवहमान गंगा समान पादलिप्त के मुख से बही ।'

General Editor's Foreword

We are thankful to Dr. (Mrs.) Pritam Singhvi for giving the Hindi translation of the **Taraṁgavati-kathā** for our Series. Pādaliptācārya's great romance preserves unusually high literary merits even in its abridgement. I personally thank and Congratulate Dr. Mrs. Singhvi for preparing the Hindi translation.

H. C. Bhayani

आभार

उन सभी गुरुजनों के प्रति जिनके प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन से मुझे उक्त पुस्तक का अनुवाद करने की प्रेरणा प्राप्त हुई, आभार व्यक्त करना भी मेरा अनिवार्य कर्त्तव्य है।

आदरणीय श्रद्धेय डॉ. भायाणी सा. हमेशा से मेरी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। आज मैं जो कुछ भी सेवा माता सरस्वती की कर पा रही हूँ उसके पीछे सदा भायाणी सा. का मार्गदर्शन रहा है। भायाणी साहब ने उनकी पुस्तक 'तरंगवती' का गुजराती से हिन्दी अनुवाद करने के लिये स्वीकृति प्रदान की उसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ।

मेरे परिवार के सदस्य, जो समय-समय पर मेरा उत्साह बढ़ाते रहते हैं उसके लिये भी हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिये पार्श्व शैक्षणिक और शोधनिष्ठ प्रतिष्ठान (अहमदाबाद) प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

क्रिश्ना ग्राफिक्स, अहमदाबाद को सुन्दर छपाई के लिये धन्यवाद देती हूँ।

प्रीतम सिंघवी

अनुक्रम

कथाका विषयविभाग	पृष्ठें
मंगल	१-१
संक्षेपकार का पुरोवचन	१-१
प्रस्तावना	१-२
कथापीठ	२-७
कथामुख	७-८
तरंगवती का जन्म, बचपन, तारुण्य	८-१५
वनभोजन समारंभ	१५-२२
चक्रवाक-मिथुन	२३-३२
प्रियमिलन	३२-६५
प्रेमियों का पलयन	६५-७२
चोरपल्ली	७२-८६
प्रत्यागमन	८६-१०५
व्याधकथा	१०५-११६
वैराग्य	११६-१२५
वृत्तांत-समापन-उपसंहार	१२५-१२६
ग्रंथकार का उपसंहार	१२६-१२६

सविस्तर विषयनिर्देश

मंगल

संक्षेपकार का पुरोवचन

ग्रंथकार की प्रस्तावना

कथापीठ

मगधदेश, राजगृहनगर, कुणिक राजा, नगरसेठ, सुव्रता गणिनी, गोचरी के लिए प्रस्तुत शिष्या, रूपवर्णन, गृहस्वामिनी का विस्मयभाव, धर्मकथा की महिमा, आत्मकथा कहने की आर्या से विनंती और उसका स्वीकार

कथामुख

वत्सदेश, कौशाम्बीनगरी, उदयन राजा, नगरसेठ

तरंगवती का जन्म, बचपन और तारुण्य

तरंगवती का जन्म, बचपन, विद्याभ्यास, यौवन, मालिन का आगमन, शरद-वर्णन, सप्तपर्ण के पुष्पों का उपहार, तरंगवती की कसौटी

वनभोजन के लिए जाने का प्रस्ताव

वनभोजन समारंभ प्रबंध, प्रयाण, उद्यानदर्शन, सप्तपर्ण, भ्रमरबाधा, कमल-सरोवर, मूर्च्छा, चेटी द्वारा पूछताछ, तरंगवती का खुलासा

चक्रवाक-मिथुन (पूर्वभव का वृत्तांत)

गंगानदी, चक्रवाकी, चक्रवाक, वनहस्ती, व्याध विद्ध चक्रवाक, चक्रवाकी-विलाप, दहन, दहन के समय चक्रवाकी का विलाप, सहगमन, वृत्तांत की समाप्ति, भावि जीवन के संबंध में निश्चय, चेटी की ओर से आश्वासन

प्रियमिलन

वनभोजन से वापसी, वैद्यराज का आगमन, ज्वर के प्रकार, विरहावस्था की व्यथा, चित्रपट का अंकन, कौमुदीमहोत्सव, दानप्रवृत्ति, सूर्यास्त, सारसिका को निगरानी का हवाला, प्रियतम को पहचान लेने का प्रस्ताव, स्वप्नदर्शन, स्वप्नफल, तरंगवती को चिंता, सारसिका का प्रत्यागमन सारसिका ने बताया वृत्तांत (चित्रदर्शन, एक अनन्य तरुण प्रेक्षक, तरुण मूर्च्छित : पूर्वभव स्मरण, चित्रकार की पहिचान, वृत्तांत की समाप्ति,) तरंगवती की मँगनी : अस्वीकार, चेटी का पद्मदेव के आवास जाना, पद्मदेव के दर्शन, संदेशसमर्पण, पद्मदेव का विरहवृत्तांत, चेटी का प्रत्यागमन, पद्मदेव का प्रेम पत्र, तरंगवती का

विषाद, चेटी का आश्वासन, तरंगवती की कामार्तता, पद्मदेव से मिलने को जाने का निश्चय, प्रियमिलन के लिए प्रयाण, प्रियतम के दर्शन, प्रेमियों का मिलन, तरंगवती के साहस के कारण पद्मदेव चिंतित, भाग जाने का निर्णय.

प्रेमियों का पलायन

दूती को साथ में लिये बिना प्रयाण, अपशुकन, नौकाप्रवास, तरंगवती की आशंका, आशंका का निवारण, गांधर्वविवाह, प्रातःकाल, उतराण : लुटेरों की टोली की पकड़ में, सामना न करने को तरंगवती की प्रार्थना, लुटेरों के बंदी बने.

चोरपल्ली

पल्लीवासियों के विविध प्रतिभाव, चोरसेनापति, पद्मदेव बंधन में, तरंगवती का विलाप, प्रोत्साहक गीतश्रवण, अमिट कर्मविपाक, सहृदय बंदिनियों को संकटकथा सूनाना. अनुकंपा से प्रेरित चोर का छुडाने का वचन, निशा का प्रारंभ, बंधनमुक्ति एवं चोरपल्ली में से पलायन, संकटपूर्ण वन्य मार्ग का प्रवास, चोर का अल्विदा : आभार दर्शन, वस्ती की ओर प्रस्थान, क्षायक गाँव पहुँचना, गाँव का तालाब, उत्सुक ग्रामीण तरुणियाँ, आहार की तलाश, सीतादेवी के मंदिर में आश्रय.

प्रत्यागमन

खोज में निकले स्वजन से मिलन, गुरुजनों का संदेश : भोजनव्यवस्था, प्रणाशकनगर में विश्रांति, प्रणाशकनगर से विदा, वासालिय गाँव में आगमन, कौशाम्बी की सीमा में प्रवेश, नगरप्रवेश, अगवानी, स्वागत और पुनर्मिलन, विवाहोत्सव, सारसिका से प्राप्त वृत्तांत (श्रेष्ठी का दुःख एवं रोष, सेठानी का विलाप, तरंगवती की तलाश और उसका प्रत्यानयन), दंपती का आनंद-विनोद, ऋतुचक्र, उपवनविहार

व्याधकथा

श्रमण के दर्शन, वंदना, धर्मपुच्छा, धर्मोपदेश, (जीवतत्त्व, कर्म, संसार, मोक्ष,) श्रमण का पूर्ववृत्तांत, (व्याध का पूर्वभव, व्याध का कुलधर्म, व्याध का जीवन, हाथी के शिकार पर, अकस्मात् चक्रवाक वध, चक्रवाकी और व्याध की अनुमृत्यु, श्रीमंत कुल में व्याध का पुनर्जन्म, द्यूत की लत, नगरी का त्याग और चोरपल्ली में आश्रय, चोरसेनापति, व्याध की क्रूरता, चोरों का तरुण दंपती को बंदी बनाना, तरुणी का आत्मवृत्तांत, व्याध को पूर्वभव का स्मरण,

तरुण दंपती को जीवनदान और छुटकारा, पुरिमताल उद्यान, पवित्र वटवृक्ष, ऋषभदेव का चैत्य, श्रमणदर्शन : प्रव्रज्याग्रहण की इच्छा, साधना.

वैराग्य

तरंगवती और उसके पति में वैराग्यवृत्ति का उदय, श्रमणदत्त हितशिक्षा, प्रव्रज्याग्रहण के लिये तत्पर, व्रतग्रहण, स्वजनों का आगमन, श्रेष्ठी द्वारा रोक-थाम और अनुमति, सार्थवाह का अनुनय, सार्थपुत्र का प्रत्युत्तर, सार्थवाह की अनुमति, सब स्वजन की बिदा, गणिनी का आगमन : तरंगवती को सौंपना, शास्त्राध्ययन और तपश्चर्या.

वृत्तांत-समापन

उपसंहार

ग्रंथकार का उपसंहार

प्रस्तावना

अनुवाद

संक्षिप्त तरंगवती कथा

(तरंगलोला)

मंगल

मैं सर्वप्रथम उन सब सिद्धों की वंदना करता हूँ, जो जरा और मरण के मगरों से भरपूर इस दुःखसमुद्र को पार कर गए हैं, जिन्होंने ध्रुव, अचल, अनुपम सुख पाया हैं

मैं विनयपूर्वक अंजुरिपुट रचकर, मस्तक नवाकर संघसमुद्र को वंदन करता हूँ - ऐसे संघसमुद्र को जो गुण, विनय, विज्ञान एवं ज्ञानजल से परिपूर्ण है ।

कल्याण हो सरस्वती का - जो सरस्वती सात स्वर और काव्यवचनों का आवास है, जिसके गुणप्रभाव से सद्‌गत कविवर भी अपने नाम से जीवित रहते हैं ।

कल्याण हो विद्वत्‌परिषद का - जो परिषद काव्यसुवर्ण की निकषशिला है, निपुण कवियों की सिद्धिभूमि है, गुणदोष-परखैया है ।

संक्षेपकार का पुरोवचन

पादलिप्त ने जो तरंगवती नाम की कथा की रचना की है, वह वैचित्र्यपूर्ण, बडे विस्तारप्रस्तार और देश्य शब्दों से सजी हुई है । उसमें कुछ स्थल पर मनोरम कुलकों, अन्यत्र युगलों एवं कालापकों, तो कभी-कभी षटकों का प्रयोग है, जो आम पाठकों के लिए दुर्बोध है । अतः यह कथा अब कोई न सुनता है, न कहता है, न उसके विषय में पूछता है : केवल विद्वद्भोग्य होने के कारण मामूली आदमी उसको लेकर क्या करे ? इसलिए पादलिप्तसूरि की क्षमा माँगता हूँ । मैं चिंतित हुआ कि 'यह कथा शायद नामशेष हो जाएगी अतः सूरिजी रचित गाथाओंमें से चयन किया और देश्य शब्द छान-छेड यथोचित संक्षिप्त किया, जो यहाँ प्रस्तुत करता हूँ, इसलिए पादलिप्तसूरि मुझे क्षमा करें ।

ग्रंथकार की प्रस्तावना

विशाल जनसमूहों के निवासयुक्त एवं कलाकुशल लोगों से भरी-पूरी

कोसला नाम की एक लोकविख्यात नगरी थी - मानो धरती पर उतर आया कोई देवलोक ! क्योकि ब्राह्मण, श्रमण, अतिथि एवं देव यहाँ पूजे जाते थे, अतः देव प्रसन्न होकर यहाँ के कुटुंबों में अमाप धनवर्षा करते थे। उस नगरी के निवासी, गुणों से परिमर्दित श्रमण पादलिप्त की बुद्धि का यह साहस आप, एकाग्र एवं अनन्य चित्त हो, मन से सावधान हो कर सुनिए। बुद्धि दूषित जब न हो तब यह प्राकृत काव्यरूप में रची गई धर्मकथा सुनिए। कल्याणकारी धर्मकथा का श्रवण जो कोई भी करता है वह यमलोक के दर्शन से बच जाता है।

कथापीठ

मगधदेश

मगध नाम का देश। वहाँ के लोग समृद्ध। कई सारे गाँव और हजारों गोष्ठों से भरपूर। अनेक कथावार्ताओं में उस देश की भारी नामवरी थी। वह उत्सवों के आवास समान था। अन्य चक्रवर्तियों के आक्रमण से, चोर और अकालों से मुक्त था। सबविधि सुखसंपत्ति से भरपूर वह देश जगप्रसिद्ध था।

राजगृहनगर

राजगृह नाम का उसका पाटनगर प्रत्यक्ष अमरावती समान था। धरती पर के नगरों में राजगृह सिरमौर था। उसमें अनेक रमणीय उद्यान, वन और उपवन थे।

कुणिक राजा

वहाँ के राजा का नाम कुणिक था। उसकी सेना विपुल और कोश सम्पन्न थे। वह शत्रुओं के जीवितकाल और मित्रों के लिए सुकाल था। उसने अपने पराक्रम से सभी दुश्मन सामंतों को पराजित किया और वशमें किया। उसने सभी प्रकार के अपराधों को फैलते रोक लिया। वह अपने कुल और वंश का आभूषण और शूरवीर था। तीर्थंकर भगवान महावीर जिनके राग-द्वेष लुप्त हो गये हैं, उनके अनुशासन से उसे अनुराग था; जो शासन जरा और मृत्यु से मुक्ति दिलानेवाला था।

नगरसेठ

उन दिनों धनपाल नाम का वहाँ का नगरसेठ था, जो साक्षात् धन-पाल

था । वह सूक्ष्म जीवों का भी रखवाला था; सभी प्रजाजनों का प्रीतिभाजन था; कुलीन, स्वमानी, सुशील, कलाकुशल और ज्ञानी था । उसकी पत्नी थी प्रियदर्शना, चंद्र जैसी सौम्य, सौभाग्यशाली और जिसके दर्शन प्रिय थे ।

सुव्रता गणिनी

वहाँ के उपाश्रय में सुव्रता नाम की गणिनी थी । वह सिद्धिमार्ग का मर्म जानने को उद्यत थी, जिनवचनों में विशारद, बालब्रह्मचारिणी थी । अनेकविध व्रतनियम एवं उपवासों के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया था । समूचे ग्यारह अंगग्रथों का उसे ज्ञान था । उसका शिष्यापरिवार विशाल था ।

गोचरी के लिए प्रस्तुत शिष्या

एक बार उसकी किसी एक शिष्या को पारांचिक तप के अंत में, छठ का पारणा करना था । अतः उसने आवश्यक एवं नियम किया । वह यथासमय जिनवचन में निपुण और श्रवणमनन में निरत ऐसी समवयस्क शिष्याओं के साथ-संगाथ में दुःख का क्षय करनेवाले नीरस पदार्थों की भिक्षाचर्या के लिए निकली । जिन स्थानों में त्रस जीव, बीज एवं हरियाली हो ऐसे गीली मिट्टी से भरपूर स्थानों को वह टालती चलती थी । जीवदया के पालन के लिए आगे की चार हाथ भूमि का वह निरीक्षण करती हुई आगे बढ रही थी । उसे भिक्षा चाहे आदर से मिले, चाहे अनादर से अथवा भिक्षादात्री चाहे निंदा, रोष या प्रसन्नता जताये - वह उसको समदृष्टि से देखती थी । शास्त्रों में जो गृह भिक्षा के लिए वर्ज्य, लोकविरुद्ध कहे हों उनको वह टालती थी - वह आर्या इस रीति से जा रही थी । उसने गोचरी के दौरान क्रम से प्राप्त हुए किसी श्रीमंत के घर में ऐसे प्रवेश किया जैसे नभतल में स्थित चंद्रलेखा का श्वेत अभ्रपुंज में प्रवेश होता है । उस गृहाँगन में, त्रस जीव, बीज एवं हरियाली से मुक्त दोषरहित एवं शुद्ध एक स्थान में सहज ही वह खडी रही ।

रूपवर्णन

उस महालय की युवान दासियाँ, उस आर्या के रूप से आश्चर्यचकित होकर विस्फारित नेत्रों से उसे देखने लगी और बोल उठी, 'अलि ! ओ' दौड़ो ! दौडो ! तुम्हें लक्ष्मीसम अनवद्य आर्या को देखना हो तो ! बारंबार लुंचन करने

के कारण छितरे, अस्तव्यस्त, सुंदर छोरवाले एवं प्रकृतिसहज मुलायम और घुँघराले बालों से उसका मस्तिष्क सुशोभित हो रहा था । उसका तप से कृश और पांडुर शरीर लावण्य से भरपूर होने के कारण अभ्रसंपुट बाहर से निकल आये पूर्णिमा के चंद्र का उपहास करता था । पतले, गोलाई लिए हुए, जुडे और मोडदार, सुंदर लौ और संपूर्ण अच्छे लक्षणवाले उसके कान बिना आभूषण के होने पर भी सुंदर लगते थे । उत्तरीय से बाहर निकाला हुआ निराभरण उसका हाथ मानो फेन से बाहर निकल आये सनाल झुके हुए कमल को शरमिंदा कर रहा है ।

गृहस्वामिनी का विस्मयभाव

विस्मित दासियों ने श्रमणी के रूपकी प्रसंशा में ऐसे उद्‌गार गुंजा दिया कि सुनकर उस गृह की मर्यादावेल लाजवंती जैसी गृहिणी बाहर आ गई । उसका स्वर गंभीर एवं मधुर था । सब अंग प्रशस्त थे और कम किन्तु मूल्यवान गहने पहने थे । श्वेत दुकूल का उत्तरासंग उसने किया था ।

अभिजात सुंदर उस आर्या को चेलियों के साथ अपने आँगन को सुहावना करती देखकर वह प्रसन्न हुई । निर्मल चीवर पहने उस आर्या को मानो मथित सिंधु से बाहर आई फेनावृत्त लक्ष्मी-सी देख विस्मित चित्त से उसे वन्दना की। चेलियों को विनयपूर्वक प्रणाम कर क्षणभर गृहिणी उस आर्या का चंद्रलोक जैसा देदीप्यमान मुख को आश्चर्यचकित नयनों से देखती रही । श्याम पुतलियोंवाली आँखों के कारण वह मुख ऐसी शोभा दे रहा था । मध्य में जैसे भ्रमरयुगलवाले पूर्ण विकसित कमल । कोमल हाथ पैरवाली लक्ष्मी जैसी उस आर्या को देख एकाएक वह गृहिणी इस प्रकार सोचने लगी :

'मैंने इसके समान सुंदरी - स्वप्न, शिल्प, चित्र या कथाओं में न कभी देखी, न सुनी । लावण्य से गढी यह कौन सौभाग्यमंजरी होगी ? अथवा क्या रूपगुणयुक्त चंद्र की ज्योत्स्ना स्वयं यहाँ पधारी है ? प्रजापति ने सभी उत्तम तरुणियों के रूपगुण का नवनीत लेकर अपनी संपूर्ण कला से क्या इस सुंदरी का निर्माण किया होगा ? मुंडित अवस्था में भी जब उसका लावण्य ऐसा है तो - गार्हस्थ्यभाव में तो उसकी रूपश्री अहो ! क्या होगी ! उसके आभूषणशून्य और मैले अंगों पर जहाँ मेरी दृष्टि स्थिर हो जाती है वहीं से हट ही नहीं सकती ! मैं प्रत्येक अंग देख 'यह अतिशय सुंदर है' ऐसे भाव से चिटक जाती हूँ देखने

में लुब्ध मैं अपनी अनिमिष दृष्टि कहीं पर स्थिर नहीं कर पाती । आर्या के असामान्य कांति से दीप्त और मन को प्रसन्नता से भरदेते रूप का तो अप्सराओं को भी मनोरथ हो ने लगा ! मुझे लगता है कि हमारी दानवृत्ति से आकृष्ट हो साक्षात् भगवती लक्ष्मी ही कमलवन का त्याग कर, साध्वी के वेश में हमारे घर पधारी हैं ।

परंतु लोगों में प्रवर्तमान किंवदन्ती है कि सभी देवता अनिमिष होते हैं, उनकी फूलमाला कभी कुम्हलाती नहीं; उनके वस्त्रों को धूल नहीं लगती । कहा जाता है कि विकुर्वणाशक्ति से देव नानाविध रूप जब धारण करते हैं तब भी उनके नेत्र उन्मेष-निमेषशून्य होते हैं । परंतु इस आर्या के चरण धूलभरे हैं और लोचन भी बन्दोन्मीलित होते हैं । अतः यह देवी नहीं बल्कि मानवी है । अथवा मुझे ऐसी शंकाएँ करना आवश्यक कहाँ ? उसे ही मैं किसी निमित्त से क्यों न पूछकर देखूँ ? - यदि हाथी ही आँखों के सामने हो तो फिर उसके चरणचिह्न ढूंढने क्यों जाएँ ?

इस प्रकार मनमें तय करके आर्या के रूपगुण के कौतूहल और विस्मय से पुलकित अंगोंवाली गृहिणीने उसे कहा, 'आओ आर्या, तुम कृपा करो : यदि तुम्हें धर्म का कोई बंधन आडे न आता हो और शुभ प्रवृत्ति हो सकती हो तो मुझे तुम धर्मकथा कहो ।

धर्मकथा की महिमा

इस तरह सेठानी ने जब कहा, तब आर्या बोली : 'जगत् के सब जीवों के लिए हितकर ऐसा धर्म कहने में कोई बाधा नहीं होती । अहिंसा के लक्षणवाला धर्म जो सुनता है और जो कहता है, उन दोनों के पाप धुल जाते हैं और दोनों पुण्यभाक् बनते हैं । यदि श्रोता अल्प समय के लिए भी सब बैरभाव छोड दे और धर्मकथा सुनकर नियम ग्रहण करे तो उसका श्रेय कथा कहनेवाले को भी मिलता है । अहिंसा के लक्षणवाला धर्म कहनेवाला अपने आप को एवं सुननेवाले को भवसागर के प्रवाह से तारता है । इसलिए धर्मकथा कहना प्रसंशनीय है । अतः जो कुछ मैं जानती हूँ वह कहूँगी । आप एकाग्र चित्त हो सुनिए ।'

आर्या को टकटकी लगाए देख रही वे सब स्त्रियाँ तब एकदूसरे को ताली दे-देकर कहने लगीं, 'हमारी मनोकामना फली: इस रूपसी आर्या को हम अनिमिष

दृष्टि से देखा करेंगी।' गृहिणीने अभिवादन कर चेलियों सहित आर्या को आसन दिया। वे स्त्रियाँ भी मन से प्रसन्न होकर और आर्या को विनयसह वन्दन करके गृहिणी के निकट जमीन पर बैठ गयीं।

अतः स्फुट शब्द एवं अर्थवाली, सज्झाय के योग्य लाघववाली, सुभाषितों के कारण कान एवं मन को रसायन जैसी उक्तियाँ प्रयोग में लाती आर्या जिनमान्य धर्म कहने लगी। वह धर्म जरा-व्याधि, जन्म-मरण और संसार को समाप्त करनेवाला, सारे जगत के लिए सुखावह, ज्ञान, दर्शन, विनय, तप, संयम और पाँच महाव्रतों से युक्त, अपार सुख का फल देनवाला था।

आत्मकथा कहने की आर्या से विनंती और उसका स्वीकार

इसके पश्चात् उसके रूप से विस्मित गृहिणी धर्मकथा में बीच आये तनिक विश्राम का लाभ उठाकर, संयम एवं नियम में तत्पर ऐसी आर्या से हाथ जोड कहने लगी, 'शुभमस्तु' धर्मकथा तो हमने सुनी, अब कृपा करके एक अन्य बात भी हमें तुम सुनाओ। हे भगवती, मुझ पर कृपा करके मैं जो कहती हूँ वह तुम ध्यान से सुनो।

आज तुम्हारा रूप देखकर मेरे नयन धन्य हो गए, अपितु मेरे कान तुम्हारी जन्मकथा सुनने के लिए अधीर हो गये हैं। किस नामधारी पिता के लिए तुम अमीवृष्टि समान थी और जैसे कौस्तुभमणि हरि का वैसे तुम उनका हृदय आनंदित करती थी? निर्मल ज्योत्स्ना की जननी समान जगदवंद्या तुम्हारी जननी के नामाक्षर क्या थे? आर्या तुमने अपने घर और पति के घर कैसा सुख पाया? अथवा किस दुःख के कारण यह अति दुष्कर प्रवज्या अपनाई? - यह सब मैं क्रमशः जानना चाहती हूँ। परन्तु इस में तुम्हें अगम्य क्षेत्र में गमन करने का दोष शायद न लगे इसके लिए तुम सावधान रहना। लोगों में कहावत है कि नारीरत्न, नदी और साधु का मूल खोजना नहीं चाहिए और धार्मिकजन का तिरस्कार करना उचित नहीं, यह मैं जानती हूँ। तथापि तुम्हारे रूप से चकित हो कुतूहल वश मैं तुम्हें यह पूछती हूँ।'

सेठानी के इतना कह लेने पर वह आर्या बोली, 'गृहिणी, यह सब कहना दुष्कर होता है : उस अनर्थदंड का सेवन करना हमारे जैसो के लिए उचित नहीं।

गृह-तंतु में भोगे सुख, पूर्व के कृत्य एवं क्रीड़ाएँ पाप सने होते हैं । अतः वे मन में लाने योग्य भी नहीं, फिर तो वाणी द्वारा कहने की बात ही कहाँ ? तथापि ऐसे वृत्तांत का कथन संसार के प्रति जुगुप्सा उत्पन्न कर सकती है । तो इस कारण से, मैं रागद्वेष से मुक्त रहकर तटस्थभाव से आत्मवृत्तांत कहूँगी । तो सुनिए आप मेरे कर्मविपाक का फल ।'

इस प्रकार जब उसने कहा तब वह गृहिणी और रमणियाँ उल्लसित हो गईं और श्रवणातुर होकर आर्या को सबने वंदन किया । श्रमणी उन सब स्त्रियों को अपने पूर्वभव के कर्मों के विपाकरूप समग्र कथा कहने लगी । ऋद्धि एवं गौरवशून्य होकर, मात्र धर्म के प्रति दृष्टि रखकर मध्यस्थभाव से साक्षात् सरस्वती जैसी आर्या बोली : हे गृहिणी, जो कुछ मैंने अनुभव किया, सुना और मुझे याद है उसमें से थोडासा छाँटकर मैं संक्षेप में वह कह बताती हूँ, तो तुम सुनो । जहाँ तक अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहा जाता है - अर्थात् यथातथ बात कही जाती है उसमें वहाँतक निंदा या प्रशंसा का दोष नहीं आता ।

कथामुख

वत्सदेश

भारतवर्ष के मध्य खंड में वत्स नाम का रम्य और सर्वगुणसंपन्न जनपद है : जो रत्नों का उद्भवस्थान, बड़े बड़े विज्ञों का समागमस्थान, मर्यादाओं का आदिस्थान, धर्म, अर्थ एवं काम का उत्पत्तिक्षेत्र है ।

सुख-सा प्रार्थनीय, विबुधों के निर्णय-सा रमणीय, निर्वाण-सा बसने योग्य और धर्मपालन-सा फलप्रद ।

कौशाम्बीनगरी

उसमें -एक कौशाम्बी नामक नगरी, जो उत्तम नगरजनों से निवसित, देवलोक की उपहासिका और जनगणमन की निर्वाहिका ।

मगधदेश की लक्ष्मी-सी, अन्य पाटनगरियों की आदर्शरूपा, ललिता एवं समृद्ध जनसमूहवाली वह यमुनानदी के तट पर फैली हुई थी ।

उदयन राजा

वहाँ उदयन नाम का सज्जनवत्सल राजा था । उसमें अपरिमित बल था ।

युद्ध समय के उसके पराक्रम और प्रताप की प्रसिद्धि थी। वह मित्रों का कल्पवृक्ष, शत्रुवन का दावानल, कीर्ति का आवास था। वह परिराजित से सुसंकुलित और श्लाघ्य था।

कांति में वह मानो पूनम का चाँद, स्वर में हंस, गति में नरसिंह था। अश्व, गज, रथ और सुभट अर्थात् चतुरंगिनी सेना के बाहुल्यवाले हैहयकुल में उसका जन्म हुआ था।

उत्तम कुल, शील और रूपसंपदायुक्त वासवदत्ता उसकी पत्नी थी : मानो महिला के सब गुणों की संपत्ति, और रतिसुख की संप्राप्ति।

नगरसेठ

श्रेष्ठियों की पंक्ति में जिसका आसन सर्वप्रथम लगता ऐसे नगरश्रेष्ठी ऋषभसेन उस राजा का मित्र और सब कार्यों में साक्षी था। वह अर्थशास्त्र में निपुण और उसके तत्त्वार्थ का जानकार था। अन्य सब शास्त्रों में भी वह निष्णात था। पुरुषोचित सब गुणों और व्यवहारों के वह निकष समान था।

वह सौम्य गुणों का बसेरा, मित मधुर, प्रशस्त और समयोचित बात करनेवाला, मर्यादापूर्ण चरित्रवाला और विस्तीर्ण व्यापार जानने वाला था।

सम्यग्दर्शन के कारण उसकी बुद्धि विशुद्ध हो चुकी थी। प्रवचन में वह निःसंशय श्रद्धान्वित था। जिनवचन का श्रावक और शुचि मोक्षमार्ग का अनुयायी था।

वह मोक्ष के विधान का ज्ञाता था; जीव और अजीव का उसे ज्ञान था।

विनय में वह दत्तचित्त, निर्जर संवर और विवेक का भारी प्रशंसक, पुण्य एवं पाप की विधि से परिचित और शीलव्रत का उत्तुंग प्राकार-सा था।

वह अपने कुल और वंश का दीपक और दीनदुखियों का शांतिगृह, गृहलक्ष्मी का मध्यावास, गुणरत्नों का भंडार और वीर था।

तरंगवती का जन्म, बचपन, तारुण्य

तरंगवती का जन्म

हे गृहस्वामिनी, मैं उसकी लाडली पुत्री के रूप में पैदा हुई थी; आठ

पुत्रों के बाद मनौती मानने से प्राप्त मैं सबसे छोटी थी। कहा जाता है मेरी माता की सगर्भावस्था सुखपूर्वक और उसकी दोहद की पूर्ति के साथ बीतने पर सिंह के स्वप्नदर्शन के साथ मेरा जन्म हुआ और दाइयों ने मेरी यथोचित देखभाल की। कहा जाता है कि मित्रों एवं बाँधवों को अत्यंत आनंद हुआ और मातापिताने बधाई का उत्सव मनाया। कहते हैं कि यथाक्रम से मेरा संपूर्ण जातकर्म भी संपन्न किया गया और पिताजी के साथ परामर्श कर मेरे भाइओं ने मेरा नामकरण करते हुए कहा - 'जलसमूह से भरपूर और टेढी-तिरछी तरंगों से व्याप्त ऐसी यमुना ने मनौती मानने पर प्रसन्न होकर इसे दी है इसलिए इसका नाम "तरंगवती" तय हो।'

बचपन

कहते हैं कि मैं मुट्ठी बन्द रखती, अवकाश में पैर उछालती बिछौने में यदि चित सुलाई जाती तो अपने आप उलटकर औंधी हो जाती थी। इसके बाद अंकधात्री और क्षीरधात्री ने एक बार खेलाते-खेलाते मुझे विविध मणिजडित फर्शबन्द भूमि पर पेट के बल सरकते सिखाया।

हे गृहिणी, कहा जाता है कि मेरे लिए खिलौनों में सोने की खंजडी, बजाने के घूघरे और सोने के बहुत से गोले थे। सदा प्रसन्न और हँसमुख मैं, 'यहाँ आ, यहाँ आ' बोलते भाइओं की गोद में खेलती और बारबार खिलखिलाकर हँस उठती।

कहते हैं कि लोगों का अनुकरण करने के लिए मैं आँख और हाथ से चेष्टाएँ करती और जब मुझे बुलाते तब मैं अस्पष्ट, मधुर उद्‌गार तुतलाती। मातापिता, भाइओं और स्वजनों द्वारा एक की गोद से दूसरे की गोद उठा ली जाती मैं। कुछ समय बीतने पर मैं ठुमक ठुमक कदम भरने लगी।

बिना समझे और मधुर 'ताता' बोलती रहती मैं कहा जाता है बाँधवों की प्रीति घनीभूत कर लेती थी।

लोगों से मुझे विदित हुआ कि चूडाकर्म का संस्कार सम्पन्न हो जाने पर मैं दासियों के झुंड से परिरक्षित यथेच्छ घूमती-फिरती थी। सोने की गुडियों से एवं रेत के घरौंदे बनाकर मैं खेलती और इस तरह सहेलियों के संग मैंने बालक्रीडा का मजा उठाया।

विद्याभ्यास

गर्भावस्था से आठवें वर्ष मेरे लिए चार प्रकार की बुद्धिवाले, कलाविशारद और धीर प्रकृति के एक आचार्य बुलाये गये। उनसे मैंने लेखन, गणित, रूपकर्म, आलेख्य, गीत, वाद्य, नाट्य, पत्रछेद्य, पुष्करगत - क्रमशः ये कलाएँ ग्रहण की। मैंने पुष्पपरीक्षा में तथा गंधयुक्ति में निपुणता प्राप्त की। इस प्रकार कालक्रम से मैंने विविध ललितकलाएँ ग्रहण की।

मेरे पिताजी हमारा कुलधर्म श्रावकधर्म पालते थे। उन्होंने अमृततुल्य जिनमत में मुझे निपुण किया। नगरी में जो श्रेष्ठ प्रवचनविद् और प्रवचनवाचक थे उन्हें पिताजी ने मेरे लिए आमन्त्रित किये और मैंने निर्ग्रंथ सिद्धान्त का सारतत्त्व ग्रहण किया। उन्होंने मुझे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का बोध क्रमानुसार कराया।

यौवन

हे गृहिणी, इसके बाद बाल्यावस्था बिताकर मैंने कामवृत्ति के प्रभाव से आनंददायक और शरीर का स्वाभाविक आभरण समान यौवन प्राप्त किया। कहा जाता है कि उन दिनों श्रीमंत, पूजनीय और देश के आभूषणतुल्य बहुत से वृद्ध गृहस्थ अपनी पुत्रवधू के रूप में मेरी माँग करते थे। परंतु कहा जाता है कि पिताजी मेरी इच्छा को सन्मानित करते थे। कोई वर समान दरजे के कुल, शील और रूपवाला दिखाई न देने के कारण उन मांगनियों का युक्तिपूर्वक अस्वीकार करते। विनयविवेक में कुशल सारसिका नामकी एक दासी मेरे प्रति स्नेह के कारण वह सारी बातचीत सुनकर मुझे कहती।

में भी 'जी, जी' कहती सखियों के बीच सतमंजिली हवेली की ऊपर की छत में खेलती। पुष्प, वस्त्राभूषण जो जो सुंदर खेलने के साधन और खाद्य पदार्थ होते वे सब मेरे मातापिता और भाई मुझे देते। मेरे विनय से गुरुजन, दान से भिक्षुकजन, सुशीलता से बंधुजन और मधुरता से अन्य सब संतुष्ट थे। कभी-कभी भावजों तो कभी-कभी सहेलियों से घिरी हुई मैं अपने गृहमंदिर में मंदरपर्वत पर की लक्ष्मी की तरह रहती थी।

मैं पौषधशाला में बारबार सामायिक करती और जिनवचनों की सेवाशुश्रूषा करती। मातापिता, बंधु-बाँधवों को हृदय से अधिक से अधिक प्रिय बनती मैं

इस प्रकार सुखसागर में निमग्न बनकर समय बिता रही थी ।

मालिन का आगमन

उन दिनों कोई एक बार पिताजी स्नान कर, वस्त्राभूषण में सज्ज हो, भोजन लेने के बाद बैठक के कमरे में आराम से बैठे थे । वहाँ कृष्णागरु के धूप की गेंडलियाँ फैल गई थीं और रंगबिरंगे कुसुममंडित शय्या बिछी हुई थी। लक्ष्मी के साथ विष्णु बातें कर रहे हों इस प्रकार वे पास बैठी मेरी माता से बातें कर रहे थे । मैं भी स्नान कर, अरिहंतों को वंदन एवं पूज्यों की पूजा करके माता-पिता को वंदन करने गई । मैंने पिताजी और माता को चरणस्पर्श कर पालागन किया, तो उन्होंने 'चिरंजीव भव' आशीर्वचन कह मुझे उनके पास बिठाई ।

उसी क्षण वहाँ श्याम वर्ण परंतु श्वेत वस्त्र में सज्ज और इस प्रकार चंद्रकिरणों से विभूषित शरद-रजनी समान लगती प्रतिदिन फूलपल्लव लानेवाली मालिन ने ऋतु के ताजे फूलों से भरे पर्णसंपुट के साथ बैठकखंड में प्रवेश किया ।

शरद-वर्णन

वह हाथ जोड, देहयष्टि को लालित्यपूर्वक झुकाकर, भ्रमर-से मधुर स्वर में पिताजी से सविनय कहने लगी : 'मान सरोवर से आगत और अब यहाँ बसकर परितृप्त हुए ये हंस शरद के आगमन की सहर्ष घोषणा कर रहे हैं ।

आश्रय लिये हुए हंस, श्वेत पद्म और यमुनातट के अट्टहास जैसे काशफूल द्वारा शरदऋतु का एकाएक प्राकट्य होने लगा है ।

नीलवन को नीले, असनवन को पीले, तो काश एवं सप्तपर्ण को श्वेत रंग से रंग देता शरद आ पहुँचा है ।

हे गृहस्वामी, शरद प्रवर्तमान है । जैसे आपके शत्रु वैसे अब मेघ भी पलायन कर गए हैं । जिस प्रकार अभी श्री पद्मसर का सेवन कर रही है, वैसे आपका उससे चिरकाल सेवन हो ।'

सप्तपर्ण के पुष्पों का उपहार

वह इस प्रकार बोलती हुई सेठ के समीप गई और पत्तों में आवृत्त सप्तपर्ण के फूलों की टोकरी उमंग से पिताजी के सामने रख दी । उसे खोलते ही मदगल

मातंग के मद की गंध जैसी सप्तपर्ण के फूलों की महक दसों दिशाओं को भरती शीघ्र ही फैलने लगी ।

सप्तपर्ण के फूलों से भरी वह टोकरी अपने मस्तक पर धरकर पिताजीनें उन फूलों से अरिहंतो की पूजा की ।

उन्होंने मुझे और मेरी अम्मां को वे फूल दिये, स्वयंने उसकी माला पहनी और पुत्रों एवं पुत्रवधुओं को भी भिजवाए ।

शरद के चंद्र जैसे सप्तपर्ण के श्वेत फूलों को उछलने पर उनमें हाथीदाँत जैसे श्वेत गुच्छ देखे और साथ ही उनमें तरुणी के अविकसित स्तन के कद का परागरजवाला स्वर्ण की गुटी जैसा एक लघु गुच्छ भी उनकी दृष्टि में आया। अतः उस कनकवर्ण का गुच्छ हाथ में पकड़े हुए पिताजी विस्मयविस्फारित नेत्रों से देर तक ताकते रहे। उसे पकड़ा और, मन में कोई विशेष निर्णय पर पहुँचने के लिए पिताजी सवाँग निश्चल हो कुछ क्षण सोचते रहे ।

तरंगवती की कसौटी

इसके बाद, मुस्कुराते हुए उन्होंने वह कुसुमगुच्छ मुझे दिया और बोले : 'बेटी, इस गुच्छ के रंग के रहस्य पर तुम मस्तिष्क लडाओ। तुमने पुष्पयोनिशास्त्र और गंधयुक्तिशास्त्र सीखा है। वह तुम्हारा विषय है। अतः बेटी, में तुमसे यह पूछता हूँ कि सप्तपर्ण के पुष्प प्रकृतितः श्वेत ही होते हैं। तो फिर यह एक गुच्छ पीला है इसके क्या कारण तुम्हारी समझ में आते हैं ? क्या किसी कलाविद ने हमें आश्चर्य में डालने के लिए वह बनाया होगा या पुष्पयोनिशास्त्र सिखाने का प्रयोग कर दिखाने के लिए ? क्षार और औषधियों के संप्रयोग से फलफूल एवं पराग को तेजी से कैसे उत्पन्न किया जा सकता है, इसके प्रयोग भी बताये गये हैं। जैसा हम इन्द्रजाल में देखते हैं उसी प्रकार औषधि के गुणप्रभाव से वृक्ष तुरंत उगाने अथवा तो फलफूलों के विविध रंगों का निर्माण करने की अनेक युक्तियाँ हैं।'

जब पिताजीने इस प्रकार कहा तब उस पुष्पगुच्छ को मैंने दीर्घ काल तक सूंघा और अच्छी तरह जाँचा-परखा। चर्चा एवं विचारप्रकियाकी शक्ति में बलवती ऐसी मेरी बुद्धि उसके रंग, रूप और गंध के गुणों की मात्रा का मैंने

यथोचित परीक्षण किया और कारण मेरी समझमें आ गया। अतः सविनय मस्तक पर अंजलि रखकर मैंने पिताजी से मेरा निकट का परिचय होने के कारण मन में विश्वास धारण कर कहा :

'वृक्षों की जमीन, काल, उत्पत्ति, पोषण, पोषण का अभाव तथा वृद्धि-इत्यादि समझ जाने के बाद ही उनकी मूल प्रकृति और उनमें परिणमित विकार अवगत किये जा सकते हैं। और ऐसे विकार किसी कलाविद की प्रयोगविधि के कारण भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु इस पुष्पगुच्छ का विशिष्ट रंग आपने जो पाँच कारणों का उल्लेख किया है उनमें से किसी का परिणाम नहीं। पिताजी, इस गुच्छ का जो रंग है वह सुगंध और ललाई लिये हुई पीले परागरज के स्तर के कारण है, और उसकी विशिष्ट गंध यह सूचित करती है कि वह उत्तम पद्म का पराग है।'

पिताजी बोले, 'बेटी, वन के बीच स्थित सप्तपर्ण के पुष्प में कमलरज होने की बात कैसे ठीक बैठ सकती है ?'

मैंने कहा, 'पिताजी, सप्तपर्ण का यह पुष्पगुच्छ कमलरज की ललाई लिए पीला किस प्रकार हुआ होगा इसके कारण का जो अनुमान मैंने किया है वह सुनिए। जिस सप्तपर्ण के वृक्ष के ये फूल हैं उस वृक्ष के समीप में शरदऋतु में शोभा से निखर उठा कोई कमलसर होगा ही। वहाँ सूर्यकिरणों से विकसित और अपने परागरज से रक्तिम् पीत वर्ण बने कमलों के पराग से लुब्ध हो भ्रमरवृंद उमड़ते होंगे। घने पुष्परज की ललाई लिये पीले वर्ण की आभावाले ये भ्रमर वहाँ से उड कर पास के सप्तपर्ण की पुष्पपेशियों में आश्रय लेते होंगे। भ्रमरवृंदों के पैरों में लगे कमलरज के संक्रमण से वे सप्तपर्ण के पुष्प कमलरज की झाई पा गये होंगे। यह वस्तुस्थिति इसी प्रकार होने में मुझे कुछ भी संदेह नहीं।' मेरे यह कहने पर वह मालिन बोली, 'तुम सचमुच ताड़ गई।' अतः पिताजीने मुझे गले लगाया, मेरा मस्तिष्क सूँघा और हर्षपूर्ण हृदय और शरीर से पुलकित हो मुझसे कहा : बेटी, तुमने रहस्य यथातथ जाना। मेरे मन में भी यही सुलझाव था, परन्तु तुमने जो कला सीखी है उसकी परीक्षा करने के हेतु मैंने तुम्हें पूछा था। कृशोदरी, तुम विनय, रूप, लावण्य, शील एवं धर्मविनय-इत्यादि गुणों से निहाल उत्तम वर यथाशीघ्र पाओ।'

वनभोजन के लिए जाने का प्रस्ताव

उसी क्षण अम्मांने पिताजी से इस प्रकार विनती की, 'बेटी से वर्णित वह सप्तपर्ण का वृक्ष देखने का मुझे अदम्य कुतूहल है।' पिताजीने कहा, 'बहुत अच्छा! तुम सब स्वजन समेत उसे देखने कलजाना और वहाँ के सरोवर में तुम्हारी पुत्रवधुओं के साथ स्नान करना।' पिताजीने तुरन्त घर के वडीलों और कारबारियों को आज्ञा की, 'कल उद्यान में स्नानभोजन होगा। उसके लिए आयोजन का आवश्यक प्रबंध कर लेना। सुशोभित वस्त्रादि एवं गंधमाल्य भी तैयार रखना - महिलाएँ वहाँ के सरोवर में स्नान के लिए जाएँगी।'

हे गृहस्वामिनी, धावों, सखियों और मेरी सब भावजों ने मुझे तुरंत अभिनंदित करते हुए घेर ली। तत्पश्चात् धाव ने मुझसे कहा, 'बेटी, तुम्हारा भोजन इस वक्त तैयार है। तो भोजन करने बैठ जाओ। वरन् भोजनसमय बीत जाएगा। बेटी, जो समय होने पर भी भोजन नहीं करता उसकी जठराग्नि बिना ईंधन की आग की तरह बुझ जाती है। कहा जाता है कि यदि जठराग्नि बुझ जाती है तो वर्ण, रूप, सुकुमारता, कान्ति एवं बल का नाश होता है। तो बेटी, चलो भोजन कर लो, जिससे समय बीत जाने पर होता दोष कोई तुम्हें न लगे।'

इस प्रकार उसने मुझे अत्यंत भावना से कहा। अतः उपरोक्त उचित समय का ध्यान रखकर मैंने वर्ण, गंध, रस इत्यादि सर्वगुणसम्पन्न भात का भोजन किया। उसका शालि कैसा था ?। यथोचित जोती हुई एवं दूधसिंचित क्यारियों में बोया गया, तीन बार उखाड़कर दाब-दूब कर रोपित, उचित रूप से बढ़कर पुष्ट होने पर काटा, मसला-कूटा गया था। चंद्र और दूध जैसा उमदा श्वेत वर्णवाला उसका भात नरम, गाढ़ी स्निग्धतायुक्त, गुण नष्ट न हो इस तरह पकाया हुआ, भाप सहित गरमागरम, सुगंधित घी से यथोचित तर्पित और चटनी, पानक इत्यादि से युक्त था। हे गृहस्वामिनी, इसके बाद दूसरे पात्र में मेरे हाथ धुलवाये और सुगंधित रेशमी वस्त्र से मेरे हाथ पोंछ तब मैंने हाथपैर के शृंगार हेतु अल्प घी एवं तेल का मर्दन किया।

कल वनभोजन के समारंभ में जाना है यह सुनकर घर की युवतियों के मुख पर हार्दिक उमंग घोषित करनेवाला हास्य छा गया था। शीघ्र ही जिससे

समाप्त हुई है दिनभर की प्रवृत्ति,
प्राप्त हुई है चक्षुओं को विषय-निवृत्ति,
जिसके कारण हो जाती है कर्म से निवृत्ति और निद्रा की उत्पत्ति
ऐसी आ पहुँची रात्री ।

अंधियारे को मिटाता दीपक निकट में रख मैं शय्या में सो गई और वह चाँदनी छिटकी मेरी रात सुख से बीती ।

वनभोजन समारंभ

मैंने हाथ-पैर और मुँह धोये, अरहंतों और साधुओं को वंदन किया, लघु प्रतिक्रमण किया और मैं वनभोजन समारंभ में जाने को उत्सुक हो गई । वनभोजन-उत्सव में जाने को अधीर युवतियों एवं पुत्रवधुओंने भी 'किसी प्रकार न कटती थी' ऐसा कहकर बीती रात को बहुत भलाबुरा कहा था । कितनी कल वनभोजन उत्सव में जाएँगी, तो वहाँ क्या-क्या देखेंगी, नहाने का आनंद कैसे लूटेंगी' इत्यादि मनोरथों की आपस में बातें करने में सारी रात जागरण में बिताई थी ।

प्रबंध

रसोइये, रक्षक, कारिंदे, कारभारी एवं परिचारक भोजन के प्रबंध के लिए सबसे पहले उद्यान पहुँच गये । तब एकाएक गगनमार्ग का पथिक, पूर्वदिशा का वदनकमल विकसित करनेवाला, जपाकुसुम-सा रक्तिम् दिनकर निकला । महिलाओं ने साथ में रंगबिरंगी, विभिन्न, बहुमूल्य पट्ट, क्षौम, कौशिक एवं चीनांशुक वस्त्र लिये, कसबियोंने कलाकौशल्य से बनाये हुए सोना, मोती और रत्नों के आभूषण लिये और सौन्दर्यवर्धक, सौभाग्यसमर्पक यौवनउद्दीपक प्रसाधन लिये

तत्पश्चात् रिश्तेदारों की सब निमंत्रित महिलाएँ आ जाने पर अम्मांने वनभोजन उत्सव के लिए निकलने की तैयारियाँ आरंभ कीं और शुभ मुहूर्त में सारी सामग्री समेत उन्होंने उनके साथ प्रयाण किया । तुरंत ही अम्मां के पीछे पीछे वासभवन का मार्ग आभूषणों की झनकार से भर देता युवतीसमुदाय चलने लगा । तरुणियों के नूपुर की रुनकझनक, रत्नजटित स्वर्णमेखला की खनखनाहट और सिकडियों की किंकिणियों की झँकार - इन सबका रम्य गुँज उठा । मन्मथ के उत्सव की शहनाई-सी उनके आभूषणों की नफीरी मानो लोगों को मार्ग में

से दूर हटने के लिए कह रह थी। अम्मां के आदेश से मुझे बुलाने आई दासियोंने उनके प्रस्थान के समाचार मुझे दिये।

अतः हे गृहस्वामिनी, शरीर पर सब अलंकार और मनोहर, मूल्यवान वस्त्रों में सुसज्ज मेरी सखियोंने मुझे स्नान करा के अलंकारो से विभूषित की। मैंने सलमा सितारों से बने बेलबूटेदार, मूल्यवान, सुकोमल, सुंदर,श्वेत, ध्यानाकर्षक ध्वजपट समान पट्टांशुक पहना। वस्त्राभूषण के आबदार रत्नों की झिलमिलाती ज्योति से मेरा लावण्य, ऋतुकाल में निखर उठी चमेली-सा द्विगुणित हो उठा।

तुरंत ही दासीमंडल से आवृत्त मैं बाहर के परकोटे से सटे चतुःशाल के विशाल आँगन में निकल आई। वहाँ मैंने वस्त्राभूषण से सुदीप्त उस युवती-समुदाय को इन्द्रभवन में इकट्ठे हुए अप्सरावृंद समान देखा। वहाँ बैलगाडी पर बैठा और जो बैलो को हाँकने में और काबू में रखने में अनुभवी था वह गाडीवान मुझे पुकारने लगा, 'तुम चलो चलो कुमारी ! वनभोजन-उत्सव में जाने के लिए यह विमान-सी सबसे सुंदर बैलगाडी सेठ ने आज तुम्हारे लिए निश्चित की है।' यह कहकर उस सेवकने मुझे त्वरित किया। इसलिए मैं कंबल बिछी उस बैलगाडी में सुखपूर्वक सवार हो गई। मेरे पीछे-पीछे मेरी धाव और दासी सारसिका भी उसमें सवार हुईं। वह गाडी घटिकाएँ रुनकाती चल पडी। स्त्रियों की देखभाल रखनेवाले कंचुकी, घर के कारभारी और परिचारक मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे।

प्रयाण

इस प्रकार सुयोजित सुंदर प्रयाण कर नगरजनों को विस्मित करते हम सरल गति से राजमार्ग पर आगे बढने लगे। मैं भाँति भाँति के हाटोंवाला, विशाल, अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त, लक्ष्मी के महामूल्यवान तत्त्व समान, नगर का राजपथ देखने लगी। हे गृहस्वामिनी, जाली से भिडे किवाडवाले घर मानो देखने में रसमग्न युवतियों के कारण विस्फारित नयनों से मुझे टकटकी लगाए देख रहे थे। देखने के उत्सुक लोग यानरूप विमान में बैठी लक्ष्मी-सी मुझे रास्ते पर गुजरती हुई अनिमेष नेत्रों से देख रहे थे।

अतिरिक्त इसके उस समय राजमार्ग पर चलते तरुणों के हृदय मुझे देखकर मन्मथ के शरजाल से मानो जल रहे थे। रमण करने का सुयोग कैसे प्राप्त करना ऐसे मनोरथ कर रहे उनमें एक पल में तो प्राण निकल का संशय

हो ऐसी तीव्र छटपटाहट पैदा होने लगी । अप्सरा-सी सौन्दर्यवती युवतियों के मन में भी मेरा सौन्दर्य देख ऐसा रूप प्राप्त करने के मनोरथ जागे । मेरा रूपलावण्य, सौकामार्य और चेष्टाओं में रमणीय शील के दर्शन करके राजपथ पर चल रहे सब लोग मानो अन्यमनस्क हो गए ।

विशाल राजपथ पर से जब हम गुजर रहे थे उस समय वहाँ फैल गई सुगंध से लोग आश्चर्यचकित हो गए । जब हम नगर से बाहर निकल गईं तब लोगों में हो रही इस प्रकार की बातें सुनकर मेरी दासियाँ हमारे पीछे दौडती हुई आकर मुझे कह गई ।

इस प्रकार उद्यान में पहुँचकर महिलाएँ वाहनों से उतरी । रक्षकगण को उद्यान के समीप के स्थान में ठहराया ।

उद्यानदर्शन

दो सखियों के साथ मैं भी गाडी से उतरी और अन्य महिलाओं के साथ मैंने भी उस सुंदर उद्यान में प्रवेश किया । उद्यान का परकोटा और द्वार उत्तुंग एवं श्वेत थे । वह पुष्पित तरुवरों से भरपूर था । नंदनवन में जिस प्रकार अप्सराएँ विहरती हैं उसी प्रकार उस उद्यान में महिलाएँ विहरने लगीं ।

उस उपवन को निहारती हुई वे पर्णगुच्छों से सभर सौन्दर्यधाम समान वृक्षों से पुष्पगुच्छ चुनचुनकर लेने लगीं । उसी समय अम्माने कहा, "चलो, चलो, हम सप्तपर्ण को देखें; कुँअरी ने उसके फूल पर से सूचित किया था न, कि वह सरोवर के किनारे होना चाहिए ।" अतः वह युवतीसमूह अम्मा के पीछे धीमी गति से आगे बढा और उस सप्तपर्ण वृक्ष को देखा ।

मैं भी अपनी धाव और सारसिका चेटी के साथ-संगाथ में सैकडों दर्शनीय, मनमोहक वस्तुओं से आकृष्ट होकर, वह सुहावना उद्यान निहारने लगी - शरदऋतु ने अपने गुणसर्वस्व के साथ वहाँ अवतरण किया होने के कारण और अनेकविध उत्तम पुष्पों से सौन्दर्यसमृद्ध बना हुआ वह उद्यान सब प्रेक्षकों को नयनरम्य लग रहा था । हजारों पक्षियों का श्रवणमधुर कलरव सुनती हुई मैं पुष्पपराग से रंजित मधुकरी-सी भ्रमण करने लगी ।

वहाँ वर्षाऋतु बीतने पर शरद के आगमन के कारण जिसका पिच्छकलाप

झड गया था मदशून्य बना हुआ एक मयूर हारे जुआरी के समान मुझे दिखाई पड़ा। वहाँ के कदलीगृह, ताडगृह, चित्रगृह, लावण्यगृह, धारागृह और केलिगृह मैंने देखे। वह उद्यान सप्तपर्णों के कारण मानो धूमिल लग रहा था, अशोकवृक्षों के कारण मानो जल रहा था, पुष्पित बाणवृक्षों से मानो आगंतुकों को निहार रहा था

सप्तपर्ण

तदनन्तर मैंने वह सर्वांगसुन्दर सप्तपर्ण देखा जिसके अधिकांश पत्ते झड़ गये थे, सर्वांग लदे हुए पुष्पों के बोझ से लचक गया था, पुष्पगुच्छों से जो वह श्वेत ही श्वेत हो चुका था और गुँजती मधुकरमाला से लैस था - मानो नीलोत्पल की माला धारण किये हुए बलदेव।

वह कमलसरोवर से उडकर आते भ्रमरसमूहों का आश्रयस्थान था।
शरदऋतु के प्रारंभ में लगे पुष्पों से छा गया था।
सरोवरतट का मुकुट समान था।
भ्रमरियों का पीहर था।
धरती पर उतर आये भ्रमररूपी लांछनवाले पूर्णचंद्र जैसा था।

हवा के कारण झडकर नीचे के भूभाग को मंडित करती उसकी पेशियों को दहीभात समझकर कौए चारों तरफ से चोंच से कुरेदते थे। मैंने पत्रपुट में लिपटा मेरे पुष्ट स्तन के कद का रूपहले खुले कोश-सा उसका एक पुष्पगुच्छ तोडा।

सभी महिलाएँ फूल चुनने में लगी हुई थी इसलिए कभी वे एकसाथ मिल जाती तो कभी वे बिलग हो जाती थीं। उस वृक्ष को बहुत देर तक निहार लेने पर मेरी दृष्टि कमलसरोवर की ओर गई।

भ्रमरबाधा

इतने में मधुमत्त भ्रमर, कमल के लालच में, कमल-सम्मान सुगंधित मेरे मुखकमल के आसपास झपट पड़े। मनोहर झनझनाहट की मधुर, सुखद आवाज के कारण अनंगशर-जैसे भ्रमर गुंजन करते हुए मेरे वदन पर कमल की भ्रांति से उतर आये। भ्रमरियों के झुंड पास आकर मेरे मुख पर आश्रय लेने को तत्पर

उन भ्रमरों को मैं अपने कोमल करों से हटाने लगी । इस तरह हाथ से रोकने से तो उलटे वे अधिक से अधिक निकट आ ही गये - मानती हूँ कि शायद पवन से हिलते पल्लवों से परिचित होने के कारण वे डरते न थे ।

भ्रमरभ्रमरियों के झुंडों के कारण मैं प्रफुल्ल चमेली-सी दिखाई पड़ती थी। डर के कारण मुझे पसीना आ गया, में थरथर काँपने लगी और मैं जोर से चीख उठी । परंतु मत्त भ्रमरभ्रमरियों के झुंडों की झनकार में और भिन्न भिन्न पक्षियों के बडे शोर-शराबे में मेरी चीख की आवाज डूब गई । घोडे की लार से भी अधिक महीन उतरीय से मैं भ्रमरों को रोकती अपना मुख ढाँप कर उनके डर से भागी। दौड़ते-दौड़ते, कामशरों के निवास-समान, चित्रविचित्र रत्नमयी मेरी मेखला मधुर झँकार के साथ टूट गई । अतिशय भयभीत हो जाने के कारण, हे गृहस्वामिनी, मैं मेखला का टूट जाने की ओर ध्यान दिये बिना बहुत मुश्किल से ऐसे कदलीमंडप में पहुँच गई जो भ्रमरों से मुक्त था ।

अतः एकाएक गृहदासी वहाँ दौडकर आई और आश्वासन देते हुए उसने मुझसे कहा, 'हे भीरु, भ्रमरों ने तुम्हें दुःखी तो नहीं की न ?'

कमलसरोवर

सुवर्णवलय से झलकते बाँये हाथ से दासी का आधार लेकर मैं उस कमलसर को देखने लगी :

उसमें निर्भय होकर कलरव करते और जोड़ी में घूमते तरह तरह के पक्षीयुगलों का निनाद उठ रहा था ।

उसमें विकसित कमलों के झुंड के झुड थे जिनमें भ्रमर निमग्न हुए थे।

प्रफुल्ल कोकनद, कुमुद, कुवलय एवं तामरस के समूह से वह सर्वत्र ढक गया था ।

मैं उद्यान की पताका-सा कमलसरोवर देखने में मग्न हुई ।

हे गृहस्वामिनी, वह रक्तकमलों से संध्या का, कुमुदों के कारण ज्योत्स्ना का तो नीलकमलों द्वारा ग्रहों का भाव धारण करता था ।

भ्रमरियों के गुंजार से वह मानो ऊँची आवाज में गीत गा रहा था।

हंसों के विलाप से वह मानो रो रहा था ।

पवन से डोलायमान कमलों से वह जैसे सविलास अग्रहस्त के अभिनयसह नृत्य करता था ।

दर्पमुखर टिटहरे, क्रीडारत बतख और हर्षभरे धृतराष्ट्रों के कारण उसके दोनों तटोंने श्वेत वर्ण धारण कर लिया था ।

भ्रमरों से क्षुब्ध मध्य भागवाले कमल, बीच में इन्द्रनील जडे हुए सुवर्णपात्र समान सुशोभित थे ।

उन पर आसीन पिंडे की तरह लपेटे क्षौम वस्त्र जैसे धवल और शरदऋतु से पाये गुणसमूहवाले हंस सरोवर के अट्टहास-से जान पड़ते थे ।

केसरलिप्त मेरे पयोधर जैसी शोभावाले, प्रकृति से ही रक्तिम, प्रिया के साथ जिनका विप्रयोग ठना हुआ है ऐसे चक्रवाक मैंने देखे ।

पद्मिनी के पत्तों पर बैठे हुए कुछ चक्रवाक हरित मणिजटित फर्श पर पड़े कनेरपुष्प के पुंज-जैसी शोभा दे रहे थे ।

ईर्ष्या एवं अरोष सहचरी के संग में अनुरक्त, मनशिल-समान रतनारे चक्रवाक मैंने वहाँ देखे ।

स्वसहचरी के संग पद्मिनीपत्रों के मध्य क्रीडारत चक्रवाक, मरकतमणि के फर्श पर लुढ़कते रत्नकलश-सी शोभा धारण कर रहे थे ।

मूर्च्छा

सरोवर के अलंकार समान, गोरोचना जैसी सुर्खीवाले उन चक्रवाकों में मेरी दृष्टि कुछ अधिक रम गई । हे गृहस्वामिनी, बांधवजन जैसे उन चक्रवाकों को वहाँ देख मेरे पूर्वजों का मुझे स्मरण हो आया और शोक से मूर्च्छित होकर मैं लुढक गई ।

होश आने पर मेरा हृदय अतिशय शोक से भर गया और मैं बहुत आँसू बहाती हुई मनोवेदना प्रगट करने लगी । मैं रोती-रोती अपनी दासी को कमलपत्र में पानी लाकर मेरे हृदयप्रदेश तथा आँसू पोंछती देखती रही ।

तत्पश्चात् हे गृहस्वामिनी, मैं वहाँ से उठकर, हरे पत्तेवाले पद्मिनीके झुंड समान, सरोवरतट पर स्थिततताजा कदलीमंडप में गई । वहां गगनतल समान अत्यंत

श्याम पत्थर की पाट पर शोकविवश हो आँसू बहाती बैठ गई ।

चेटी द्वारा पूछताछ

अतः दासीने मुझसे पूछा, 'हे स्वामिनी, भोजन यथोचित नहीं पचा क्या ? अथवा अतिशय थक गई है क्या ? या फिर कुछ तुम्हें काट गया ?' मेरे आँसू पोंछती वह स्वयं भी मेरे लिए स्नेह के कारण आँसू बहाने लगी; उसने आगे पूछा, 'तुम्हें किस कारण से मूर्च्छा आई ? मुझे सचसच बात कह, जिससे शीघ्र उपाय किया जाय । विलंब होने पर तुम्हारे शरीर को कदाचित कोई हानि न हो जाए!

कहा जाता है कि व्याधि की, दुर्जन की मैत्री की और दुःशील स्त्री की उपेक्षा करनेवाला बाद में भारी दुखी होता है । प्रमाद सेवन से अनर्थ उपस्थित हो सकता है और विनाश भी । अतः हे सुंदरी, सभी विषय में समय पर उपाय करना यही अच्छा है । इसलिए उपस्थित हुए छोटे-से दोष की ओर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । अन्यथा उचित समय पर जो नाखून से छिद सकता है उसे समय बीत जाने पर कुल्हाडे से काटना पड़े ऐसा हो जाये ।'

सहेली के लिए इस प्रकार के अन्य भी साहजिक पथ्य वचन दासी ने अनुनय विनय करते हुए मुझको कहा । अतः उठ खडी होकर मैने उससे कहा, 'तुम डरो मत, मुझे अजीर्ण नहीं हुआ है, न मैं अति श्रमित हो गई हूँ या न तो मुझे कुछ काटा है ।' वह बोली, तो फिर ऐसा क्यों हुआ कि उत्सव समाप्त होने पर जिस तरह इन्द्रध्वज की यष्टि जोरसे जमीन पर गिरती है उसी प्रकार तुम मूर्च्छाविकल अंगों सहित धरती पर लुढक पड़ी ? हे सुंदरी, मेरी समझ में नहीं आता इसलिए मैं तुम्हें पूछ रही हूँ; अतः तुम अपनी इस दासी को यथातथ पूरी की पूरी बात बताओ ।

तरंगवती का खुलासा

तब हे गृहस्वामिनी, उस मरकतमणि के गृह समान कदलीगृह में शान्ति से बैठकर मैंने सारसिका को मधुर वचनों में यह बात बताई । 'हे सखी, मूर्च्छित हो मैं किस कारण लुढक पड़ी, इसकी कथा बहुत लम्बी है । मैं तुम्हें थोडे में कहकर सुनाती हूँ । सुनो, तुम और मैं एकसाथ जन्मीं, एक साथ धूल में खेलीं और साथ-संगाथ में ही हमने सुख-दुःख भुगते हैं । और तुम तो मेरा सारा भेद

जानती हो। इसलिए ही मैं तुम्हें यह बात कहती हूँ। हे प्रिय सखी, तुम तो इसका खूब ध्यान रखती हो कि जो तुम्हारे कर्णद्वार में प्रविष्ट होता है, वह मुख से बाहर न निकल पाये। इसीलिए तो मैं तुम्हें यह बात बताती हूँ। मैं तुम्हें मेरे प्राणों की सौगंध देती हूं कि तुम मेरा यह रहस्य किसी से न कहना।'

इस प्रकार सारसिका को जब मैंने शपथ से बाँध ली तब वह मेरे पाँवों में गिरकर कहने लगी, 'तुम कहती हो वैसा ही करूँगी। मैं चाहती हूँ कि तुम अपनी यह बात मुझे कहो। हे विशालाक्षि, मैं तुम्हारे चरणों और मेरे प्राणों के शपथ खाती हूँ कि तुम जो कहोगी वह मैं प्रगट करूँगी ही नहीं।

मैंने कहा, 'हे सारसिका, तुम मेरे प्रति अनुरागवाली हो इसलिए तुम्हें बात कहती हूँ। मेरा कोई भी ऐसा रहस्य नहीं जो मैंने तुमको न कहा हो। पूर्वभव में मैंने जो दुःख सहा है इसके कारण मेरी आँखों से आँसू बरस रहे हैं। तीव्र वेदना फिर से सहने की स्थिति पैदा होने के भय से मैं यह कहते हिचकिचाती हूँ। परन्तु तुम सुनो, सुनते समय खिन्न या विह्वल मत होना - प्रियविरह के कारुण्यसभर सारे सुखदुःख का सिलसिला मैं बयान करती हूँ। तुम्हें सुनने का भी कौतूहल है, तो मैं यहाँ शान्ति से बैठकर शोक से खिन्न और अश्रुपुरित नेत्रों से अपनी व्यथा-कथा कहती हूँ।

पूर्वभव का वृत्तांत

चक्रवाक-मिथुन

गंगानदी

मध्यदेश के मित्र-सा अंग नामक देश था : धान्य से भरापूरा और शत्रु-आक्रमण, चोर एवं अकाल से मुक्त ।

उसकी राजधानी थी चंपा - रमणीय वनराजि और उद्यानों से सजी हुई, सभी उत्तम पुरियों के गुणों से समृद्ध वह इस प्रकार सचमुच ही अद्वितीय पुरी थी।

जिसके दोनों तट स्निग्ध एवं अनगिनत गाँव, नगर और जनपदों से खचाखच थे ऐसी पक्षियों के झुँडों से ढकी, अंगदेश की रमणीय नदी गंगा वहाँ से होकर बहती थी ।

कादंब पक्षीरूप कुंडल एवं हंसरूप मेखलाधृत, चक्रवाकरूप स्तनयुगल से शोभित, सागरप्रिया गंगा फेन का वस्त्रपरिधान कर गमन कर रही थी।

उसके तट के वृक्ष वनगजों की दंतशल के प्रहारों से अंकित थे

उसके तटप्रदेश में जंगली भैंसों, बाघों, तेंदुओं और लकडबघ्घों का बडी तादाद में मुकाम था

उस नदी के तट पर परिपक्व कलमी चावल की फसल जैसी ललाई लिये हुए चक्रवाकयुगलों के यूथ सुंदर लगते थे । वे अपनी-अपनी जोडी के साथी पर सदा परस्पर अनुरक्त रहते ? वहाँ धृतराष्ट्र, सारस, जलकूकडी, कादंब, हंस, टिटहरे और ऐसे अन्य पक्षीयूथ निर्भय होकर स्वच्छंद क्रीडा करते थे।

चक्रवाकी

हे सखी, वहाँ मैं पूर्वभव में एक चक्रवाकी थी । कर्पूरचूर्ण मिलाए कपिले जैसा हलका रतनारा मेरे शरीर का वर्ण था । उस पक्षीभव में उस अवस्था के अनुरूप मैं प्रचुर सुखसम्मान में आसक्त होने के कारण उससे उत्तर के मनुष्यभव का मुझे स्मरण होता था । संसार में सब योनियों के जीवों को, यदि वे सुखसंपत्ति से मोहित हों तो उन्हें पूर्वजन्म की स्मृति आया करती है ।

जिसमें सुख-चैन से घूमना-फिरना था, वांछित वस्तु प्राप्त करने में

निरंकुशता थी ऐसी चक्रवाक योनि में घनिष्टता से आसक्त थी। जैसा पूर्ण दोषमुक्त अनुराग चक्रवाकों में होता है, वैसा जीवलोक के अन्य प्राणियों में आपस में नहीं होता।

चक्रवाक

वहाँ एक चक्रवाक था।

थोडा-सा गोलाइ लिए, सुंदर, सशक्त उसका शरीर था।

अगरु जैसा मस्तिष्क का वर्ण था।

गंगा में घूमने-घामने में वह कुशल था।

श्याम चरण और चोंचवाला वह चक्रवाक लावण्य में ऐसा था जैसे नीलकमल की पंखुडियाँ मिश्रित ताजा कोरंट पुष्पों की राशि का आभास उत्पन्न करता था।

अंतिम साँस तक निरंतर एकसमान प्रेमवृत्तिवाला वह स्वभाव से भद्र एवं गुणवान था, और तपस्वी की तरह रोषवृत्ति से बिलकुल मुक्त था।

नीरभरे मेघ समान जलप्रवाह में विद्युत-सी त्वरित गतिवाली मैं उसके संग संग सरिता के तटों के कंठाभरण-सी विहरती थी

कमलिनी की कुंकुम अर्चा-सी, गिरिनदी की रत्नदामिनी-सी, तटप्रदेश में प्रसन्नता से झूमती, प्रिय में अनुरक्त होकर मैं घूमती-विचरती थी।

परस्पर के श्रोत्रों को शान्तिदायक कर्णरसायण-समान मनोहर कलरव करते हम खेलते-कूदते थे।

हम एक-दूसरे का पीछा करते, परस्पर स्वर का अनुकरण करते, आपस में अनुरक्त, एक-दूसरे से पलभर बिछोह नहीं चाहते थे।

इस प्रकार एक-दूसरे का अनुसरण करते हुए हम दोनों का जीवनक्रम बाधारहित और संतोषसभर व्यतीत हो रहा था। इस ढंग से हम भिन्न-भिन्न नदियों में, अनेक रमणीय पद्मसरोवरों में, रेतीले या टीलेवाले मनोहर तीरप्रदेश में आनंद-क्रीडा करते थे।

वनहस्ती

तब एक बार अनेकविध पक्षियों के समूहों और युगलों के बीच हम,

रत्न की गचकारी-सी भागीरथी की जलसतह पर खेलते थे ।

उस समय वहाँ सूर्य के ताप से तप्त एक मदमस्त हाथी नहाने आया। राजलक्ष्मी-जैसे चंचल एवं दुंदुभि जैसा मधुरगभीर शब्द कर रहे उसके कान उसके स्कंध पर पड़ते थे ।

वह मेघ की तरह गर्जना करता था, गिरिशिखर-सा स्थूल उसका शरीर था, गंडस्थल मद से लिप्त था और शरीर धूलिस्नात था ।

उसके मदप्रवाह की मनहर महमहती सुगध वनवृक्षों की पुष्पसुगंध से भी बढकर थी । उसके शरीर पर से बहता मदजल ताजा सप्तपर्ण के फूलं की सुगंध जैसा सुगंधित था । उसके वायु के समान वेग से वह मद आसपास की धूलि पर छिडकता आ रहा था । सागर की महिषी गंगा के विशाल तटरूप जघन जैसे तट पर मानो मेखला की रचना करता वह गजराज जहाँ हम थे उस ओर ललित गति से आने लगा ।

गंगा उसके आगमन से जैसे डरती हो इस तरह उत्पन्न जबरदस्त कल्लोलों के बहाने मानो वह दूर खिसकने लगी ।

बराबर पानी पीने के बाद वह जब धरा में उतरा और उसमें निमग्न हुआ तब वह सुन्दर लगता था ।

सूँड से चारों ओर एवं अपनी पीठ पर जल इस प्रकार उछालता, मानो वह मलिन जल स्वच्छ करने की आतुरता से धरा को उलीच डालना चाहता हो ऐसा लगता था ।

हे सखी ! सूंठ को जल से भरकर जब वह जलधारा छोडता था तब वह अग्र भाग से स्रवते निर्झरवाले गिरिशिखर-सा सुन्दर लगता था ।

वह सूंठ जब ऊँची करता तब उसका लाल तालु, जीभ और होंठवाला मुख, शुद्ध अंजन के गिरि में ईंगुर की खान की गर्ता जैसा सुन्दर लगता था ।

जल में डुबकियाँ लगाकर, जलप्रवाह को अनेक प्रकार से घंघोलकर जल पीते पीते उसने हम सब पक्षियों को उडा दिये । दूर उड जाने पर भी हमारा भय मिटता न था । नहाकर शान्ति का अनुभव करता हाथी अपनी इच्छानुसार पानी से बाहर निकला ।

व्याध

उस समय प्राणियों को मारकर अपना जीवननिर्वाह चलाने वाला एक युवान, बलवान व्याध वहाँ आ धमका ।

जंगली फूलों की माला उसने सिर पर लपेटी थी ।

हाथ में धनुष्यबाण लिये वह कालदंडधृत यमराज-सा लगता था ।

उसके नंगे पैर खम्भों जैसे थे ।

पैरों के नाखून भग्न एवं बेढंगे थे ।

पैरों की उँगलियाँ उभरी हड्डियोंवाली एवं बेमेल थीं ।

जाघें उभरी थीं ।

सीना बहुत चौडा था ।

हाथ बारबार धनुष्य खींचने के अभ्यास के कारण कठोर हो गये थे ।

दाढीमूछ जरा लाल-सी और बढी हुई थी ।

चेहरा उग्र था ।

आँखें पिंग वर्ण की एवं मटमैली थीं ।

दाढे लम्बी, मूडी हुई, फटी हुई एवं पीलापन लिये मटमैली थीं ।

कन्धे प्रचंड थे

चमडी हवा के थपेडे एवं धूप की गरमी से काली एवं कर्कश हो गई थी ।

वाणी कठोर थी ।

पक्षियों की मौत-सा वह यमराज वहाँ आ पहुँचा । उसने कंधे पर तुंबा लटकाया था । उसने डरावना व्याघ्रचर्म पहना था, जो काले काजल से चितकबरा किया हुआ पीतवस्त्र-सा लगता था ।

उस हाथी को देख वह व्याध, जहाँ हाथी पहुँच न पाये ऐसे स्थान में नदी के किनारे उत्पन्न एक प्रचंड तनेवाले विशाल वृक्ष के पास पहुँच गया । कंधे के पास निशाने के लिए धनुष्य टिकाया, दृष्टि तिरछी कर के उस दुष्ट ने

उस जंगली हाथी को मार गिराने के लिए धनुष्य की प्रत्यंचा पर बाण चढाया। निशाना पक्का साधा और उसने धनुष्य की प्रत्यंचा पर चढाया हुआ वह प्राणघातक बाण हाथी की ओर छोडा। उस कालमुहूर्त में उधर से गुजर रहे मेरे साथी को कालयोग से उस बाण ने कटिप्रदेश में बींध डाला। तीखी चोट की पीडा से वह मूर्च्छित, गति एवं चेष्टाशून्य होकर खुले पंखों की स्थिति में पानी में धबाके की आवाज के साथ गिरा और साथ ही मेरा हृदय भी भग्न हो गया।

विद्ध चक्रवाक

उसे शरविद्ध देख पहलेपहल मानसिक दुःख का दबाव झेलने के लिए अशक्त होकर मैं भी मूर्च्छित हुई और नीचे गिर पड़ी। थोडी देर बाद किसी तरह होश संभला तब शोकाकुल हो बिलखती मैं अश्रुबाढ से छलकते नेत्रों से मेरे पिउ को देखती रही।

उसके कटिप्रदेश में तीर चुभा था; दोनों पंखों का संपुट बिखरकर, चौडा होकर ढल चुका था; हवा के थपेडोंने झुकाकर तोड दी गई, बेलों में उलझा पद्म-सा वह पड़ा था। गिरने के आघात के कारण बाहर बह निकले लहू से वह लथपथ था और लाख से लिप्त जल से भीगे स्वर्णकलश-सा दिखाई देता था।

लहुलुहान शरीरवाला वह मेरा साथी चंदन के घोल से सिंचित पूजनसामग्री के अशोकपुष्पों के ढेर जैसा लगता था।

जलप्रवाह के तट पर पडे पलाश-जैसा सुन्दर वर्णवाला वह क्षितिज में डूबते सूर्य-सा दिखता था।

मेरे प्रियतम को लगा हुआ बाण चोंच से खींच निकालने में मुझे यह भय लग रहा था कि बाण खेंचने से होनेवाली वेदना के, फलस्वरूप शायद वह मर जाए।

पंख फैलाकर मैंने उसे आलिंगन दिया और, 'हा ! हा ! कंथ' बोलती आँखों में आँसू भरकर मैं उसके सामने जाकर उसका मुख देखने लगी।

बाण प्रहार से निष्प्राण बने मेरे प्रियतम की चोंच वेदना से खुल गई थी।

आँखों के डेले ऊपर चढ गये थे और सभी अंग बिलकुल शिथिल हो गये थे।

किंकर्तव्यविमूढ बनी हुई मैं, स्वाभाविक प्रेमवश लगातार आ रही तरंगों से घिरे उसको, वह मृत था फिर भी जीवित मानती रही थी । परंतु जब उसे बिलकुल निस्तेज हुआ देखा तब एकाएक आ पड़े दुःसह शोकावेग से मूर्च्छित होकर होश खो बैठी ।

इसके बाद किसी प्रकार होश में आने पर मैं अपने आगे के पंख चोंच से तोड़ने लगी. उसके पंख सहलाने लगी और पंख से मैं उसे भेंटने पड़ी। हे सखी ! मैं उसके आसपास उडती, पानी छिडकती, मृत प्रियतम के चारों ओर चक्कर काटती इस प्रकार मेरे हृदय के करुण विलापवचन बोलने लगी ।

चक्रवाकी-विलाप

अरेरे ! दूसरों के सुख को तहस-नहस करनेवाले किस बेदर्द ने इसे बींध डाला ?

किसने सरसीरूप सुंदरी के इस चक्रवाकरूप सौभाग्यतिलक को पोंछ डाला ?

किसने मुझे अचानक यह स्त्रियों के सुख का विनाशक, शोकवर्धक सीमाहीन वैधव्य दिया ?

हे नाथ ! तुम्हारे विरह से उद्भूत अनुताप के धुएँ एवं चिंता की ज्वालामय शोकाग्नि से दहक रही हूँ

कमलपत्र की आड में जब तुम हो जाते और तुम्हारा रूप न दिखने पर मैं तुम्हारे दर्शनवंचित हो जाती तब कमलसरोवर में मेरा मन न लगता था । मेरी दृष्टि अन्य किसी बात पर लुभाती ही न थी - कमलपत्र की दूरी पर तुम्हारे होने पर भी मुझे तुम दूर के अन्य देश गये हो ऐसा लगता था ।

तुम मेरे लिए अदृश्य जब बने हो तब मेरा यह शरीर किस लिए टिका है ? प्रिय के वियोग का दुःख सतत होता है ।

दहन

जब वनगज वापस चला गया तब वह वनचर मेरे सहचर को विद्ध देख आह भरता वहाँ आ पहुँचा । हाथ से काँपता, बडे शोकप्रवाह-जैसा वह व्याध,

जहाँ मेरा प्रियतम मृत हो पड़ा था उस जगह आया । प्रियतम के प्राणघातक यम समान भीषण ऐसे उसे देखते ही भय से तिलमिलाती मैं त्वरा से आकाश में उड गई

इसके बाद उसने चक्रवाक को पकडा और अपना बाण उसमें से खेंच लिया और मरा जानकर उसे रेतीले तट पर करुणापूर्वक रखा । मेरे प्रियतम को चंद्रकिरण-समान श्वेत तट पर डालकर वह नदी के आसपास लकडियाँ ढूँढने लगा।

वह वनचर लकडियाँ लेकर लौटा इससे पहले मैं प्रियतम के पार्श्व में दुबक बैठी । 'हाय नाथ ! मैं तुमको यह अंतिम बार ही देख पाऊँगी । एक क्षण में तो तुम सदा के लिए दुर्लभ हो जाओगे ।' इस प्रकार मैं विलाप करने लगी।

इतने में वह वनचर शीघ्र ही लकडियाँ लेकर मेरे प्रियतम के पास आ पहुँचा । अतः मैं भी तेजी से उड गई ।

हाथ में लकडियों के साथ उस भयावने को देख मैं सोचने लगी कि यह दुष्ट मेरे प्रियतम को इनसे ढककर जला देगा । मन में इस प्रकार बारबार सोचती दुःख से संतप्त मैं पंख फडफडाती अपने प्रियतम के ऊपर चारों ओर मंडराने लगी ।

तदनन्तर उसने धनुष्यबाण एवं चमडे की कुप्पी अलग रख मेरे प्रियतम को लकडियों से ढक दिया । इसके बाद व्याधने बाण द्वारा अरनी में आग उत्पन्न की और 'तुझे स्वर्ग मिलो' ऐसी घोषणा उच्च स्वर से की । धूमिल एवं लपटों से प्रकाशित वह आग मेरे प्रियतम पर छा गई देखकर जैसे दावानल से वन भभक उठता है इस तरह मैं एकाएक शोक से झुलसने लगी । यम ने डाली आफत से संतप्त मैं अपनी निराधार स्थिति पर रोने लगी और विलपती हुई, हृदय से प्रियतम को पुकारती इस प्रकार कहने लगी :

दहन के समय चक्रवाकी का विलाप

सरोवर, सरिता, बावली, जलतट, तालाब, समुद्र एवं घाटों में उल्लासपूर्वक जिसने आनंदविहार किया ऐसे तुम इस दहनपूर्ण आग कैसे सह सकोगे ?

इस हवा के झकोरों से इस ओर से उस ओर लपकती ज्वालालपटों से दहकती अग्नि तुमको जला रही है । अतः हे कान्त ! मेरे अंग भी जलने-दहकने

लगे हैं ।

मुझे प्रियतम के संयोग से वियोग में धकेलकर हे देव ! तुम पराई विडंबना देखने के रसिया भले, तुम निर्दय होकर देखते रहो ।

लोहे के बने यह हृदय ! तुम पर आ पडी यह विपत्ति देखकर भी फट नहीं गया तो निःशंक ही तुम दुःख भुगतने के लायक हो ।

प्रियतम के संग में रहकर ऐसी आग मैं सौ बार सह सकती हूँ, लेकिन यह प्रियवियोग का दुःख मुझसे नहीं सहा जाता ।

सहगमन

मैं इस प्रकार विलाप करती अतिशय शोक से उद्विग्न हो गई और स्त्रीसहज साहसवृत्ति से मेरे मन में मरने का विचार कौंधा । तुरन्त ही मैं नीचे उतरी और प्रिय के अंग के संस्पर्श से शीतल लग रही आग में पहले हृदय झोंका, अब मैं अपनी काया झोंकने को गिरी ।

इस प्रकार जिसे प्रियतम के शरीर का स्पर्श हुआ था उस शरीर को मैंने मेरी ग्रीवा जैसी कुंकुमवर्णी आग में डाल दिया । जैसे मधुकरी अशोकपुष्प के गुच्छ पर झपटती है वैसे मैं आग में कूद पड़ी ।

धाँय-धाँय जलती स्वर्ण-सी पिंगवर्णी शिखाओं के रूप में नाचती आग मेरे शरीर को जलाने लगी फिर भी प्रियतम के बिछुडने के दुःख-पीडित मुझे आग पीडाकारक न जान पड़ी ।

इस प्रकार हे सारसिके, मुझसे पहले चल बसे मेरे प्रियतम के शोकाग्नि की ज्वाला से भभक उठी मैं उस आग में जल मरी ।

वृत्तांत की समाप्ति

हे गृहस्वामिनी, प्रियतम एवं मेरी मृत्यु का वृत्तांत-कथन के दरम्यान उत्पन्न दुःख के कारण मैं मूर्च्छित होकर लुढक पड़ी । होश आने पर मन एवं हृदय से व्यथित मैंने धीरे-धीरे सारसिका से कहा : 'जल मरने के बाद मैंने इस कौशाम्बी नगरी के सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठी के घर जन्म लिया । शरद के अंग जैसे चक्रवाकों को इन जलतरंगों पर विहरते देखकर हे सखी ! मुझमें तीव्र उत्कंप

हुआ । चक्रवाकों के युगल देखने में जब तल्लीन थी तब तुरन्त मेरे हृदयसरोवर में मेरा वह चक्रवाक उत्तर आया और हे सखी ! अनेक गुणों के कारण रुचिकर ऐसे मेरे चक्रवाकी के भव में जो कुछ मैंने भुगता था और वह सब जो अभी कह सुनाया मुझे याद आया है । मेरी इस स्मृति के फलस्वरूप प्रियतम के उस वियोग की करुण कहानी मैंने तुम्हें संक्षेप में कह सुनाई ।'

भावि जीवन के संबंध में निश्चय

'तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ - जब तक मेरे उस प्रियतम का मुझसे पुनर्मिलन हो न जाए तब तक यह बात तुम अन्य किसी को मत बताना । इस लोक में किसी भी प्रकार उससे मेरा समागम यदि हो सकेगा तो ही हे सखी, मैं मानवीय सुखभोगों की अभिलाषा रखूँगी । सुरतसुख की स्पृहा करती मैं आशापिशाची पर विश्वास कर उसे मिलने के लालच में सात वर्ष प्रतीक्षा करूँगी । परन्तु हे सखी ! उस अवधि में यदि मेरे हृदयमंदिर के वासी को न देख पाऊँगी तो जिन-सार्थवाह ने चलकर बताये मोक्षमार्ग में प्रव्रज्या अपनाऊँगी । फिर तो मैं ऐसा तपाचरण करूँगी जिसके फलस्वरूप सांसारिक बंधन में स्थित लोगों पर प्रियजनविरह का दुःख जो सहज ही आ पड़ता है वह मैं पुनः कदापि न पाऊँ । मैं श्रमणत्वरूप पहाड पर निर्विघ्न चढ जाऊँगी जिससे जन्म-मृत्यु इत्यादि सब दुःखों का निवारण हो जाएगा ।'

हे गृहस्वामिनी ! इस प्रकार मुझमें दासी पर अत्यंत अनुराग एवं स्नेह होने के कारण दासी को मैंने अपनी कथनी कहकर अपना शोक कम किया ।

चेटी की ओर से आश्वासन

मेरा यह वृत्तांत सुनकर मुझ पर वात्सल्यवती, कोमल हृदया सारसिका मेरे दुःख एवं शोक से दुःखित होकर लम्बे समय तक रोती रही । तत्पश्चात् वह रोती-सिसकती मुझसे कहने लगी : "हाय रे ! ओ स्वामिनी ! मैने अब जाना कि प्रियविरह का तुम्हारा दुःख कितना हृदयदाहक है । पूर्वभव में किये अपने कर्मों के पापवृक्षों के कटु फल कालनिर्गमन के बाद पकते हैं । हे स्वामिनी ! तुम अपना विषाद इस समय भूल जाओ । हे भीरू ! दैवकृपा से तुम्हारे उस चिरपरिचित प्रियतम से तुम्हारा समागम हो ही जाएगा ।"

इस प्रकार अनेक मधुर वचनों से मुझे आश्वस्त किया। समझा-बुझाकर उसने मुझे स्वस्थ किया और जल लाकर मेरे आँसू धो डाले। इसके बाद हे गृहस्वामिनी! दासी के साथ उस कदलीमंडप से मैं बाहर निकली और उस स्थान पर पहुँच गई जहाँ मेरी अम्मा के समीप हमारा परिचारक वर्ग टहल रहा था।

प्रियमिलन

वनभोजन से वापसी

वहाँ बावडी के तट पर बैठकर स्नान-सिंगार करने में व्यस्त अम्मा को देखकर मैं उनके पास गई। तब मेरी बिंदिया कुछ बिगडी हुई थी, आँखें लाल हो गई थीं, उनमें अंजन नाममात्र रह गया था। मेरा मुख प्रातःकाल के म्लान चंद्र-सा फीका-निस्तेज देखकर अम्मा दुःखी हुई और कहने लगी, 'बिटिया, क्या उद्यान में घूमने-घामने की थकान के कारण तुम इस वक्त मुरझाई उत्पलमाला-सी शोभा-सुषमाविहीन लग रही हो?'

उस समय प्रियतम के वियोग से जिसका सर्वस्व छीन गया हो ऐसी दुखिया मैं आँसू से डबडबाई आँखो के साथ बोली, 'मेरे सिर में दर्द हो रहा है।'

'तो बेटी तुम नगर में वापस लौट जाओ।'

'मुझसे एक डग भी चला नहीं जाएगा। मुझे ज्वर चढ आया है।'

यह वचन सुनकर अत्यंत खिन्न होकर मेरी वत्सल माताने कहा, 'जिससे तुम स्वस्थ हो जाओ हम ऐसा ही करेंगे। मैं भी यदि नगरी में न आऊँ तो ऐसी नादुरस्त तुम्हें अकेली कैसे भेज दूँ? मेरी बिटिया, तुम सारे कुल की सर्वस्व हो।'

यह कहकर अतिशय स्नेहवाली मेरी अम्माने शयनानुकूल एक उत्तम वाहन मेरे लिए जोतवाया। इसके बाद उन महिलाओं से उसने कहा, "तुम सब स्नानसिंगार कर लेने के बाद, भोजन से निबट कर समय पर लौट आना। हाँ, मुझे जरा नगर जाना है, कुछ त्वरा का अनिवार्य काम है, परन्तु तुम सब किसी प्रकार व्यग्र मत होना।" इस प्रकार उन सबको भला लगे ऐसे लहजे में कहा। उन स्त्रियों को वनभोजन के आनंदोत्सव में कुछ भी रुकावट आए इस दृष्टि से अम्माने अपने नगर में लौटने का सही कारण बताया नहीं। साथ में आये हुए सब रक्षकों, देखभाल रखनेवाले बुजुर्गों एवं अंतःपुर-रक्षकों को अपने-अपने

कर्तव्य में संपूर्ण सावधान रहने की सूचना देकर वह निकली । परिवार के कुछ लोगों एवं अनुभवी परिचारकों को साथ लेकर वाहन में बैठकर अम्मा मेरे साथ नगर में लौटीं।

मैं वासभवन में गद्दे-तकिया से सज्ज शय्या में बैठ गई । गले का मोतियों का हार, माला,कान का कुंडलयुगल, कटिमेखला ये सब उतारकर मैंने दासी को सौंप दिया ।

तब अम्माने मेरे पिताजी से कहा, 'तरंगवती के शरीर में टूटन हो रही है, सिर में दर्द हो रहा है । इसलिए उद्यान में अधिक समय ठहरना उसे रास न आया । जिसके वास्ते मैं उद्यान गई, वह सप्तपर्ण वृक्ष सरोवर के समीप में ही खडा एवं पुष्पाच्छदित मैंने देखा । सब स्त्रियों को उद्यान में रमण एवं भ्रमण करने में कोई बाधा न पहुँचे इस हेतु मैंने अपने लौट आने का सच्चा कारण उनको नहीं बताया ।' यह बात सुनकर मुझसे पुत्रों से भी अधिक स्नेहगाँठ में बंधे पिताजी बहुत व्याकुल एवं दुःखी हुए ।

वैद्यराज का आगमन

अम्मा की राय से वैद्य बुलाया गया । वह विवेकबुद्धिसंपन्न एवं अपनी विद्याप्रवीणता के लिए नगर में मशहूर था, उत्तम कुलजात, स्वभाव से गंभीर एवं चारित्र्य का धनी था, शास्त्रज्ञ था और उसका हाथ, शुभ, कल्याणप्रद एवं मृदु था।

सब प्रकार की व्याधियों के लक्षण, निदान, उपचार एवं तत्संबंधित औषधी की प्रयोगविधियों में कुशल वह वैद्य आया । आसन पर आराम से बैठने के बाद वह मुझसे पूछताछ करने लगा, 'मुझे यह कहो कि अधिक कष्ट तुमको किस बात का है - ज्वर का या सिरदर्द का ? तुम विश्वास करना, इसी पल तुम्हारा दर्द मैं दूर कर देता हूँ । तुमने गत दिन भोजन में क्या-क्या खाया था ? तुमने जो खाया वह अच्छी तरह हजम हुआ था ? तुम्हारी रात कैसी गुजरी ? आँखें दबोच दे ऐसी नींद भली-भाँति आई थी ?

तब सारसिकाने शाम को जिन जिन चीजों का मैने आहार किया था और पूर्वजन्मस्मरण को छोड वनभोजन के लिए हम गये थे यह बात बताई । इस पूछताछ एवं मुझे देखने-परसने के बाद वस्तुस्थिति का मर्म पाकर वैद्य कहने लगा, "इस

कन्या को कोई व्याधि नहीं है ।"

ज्वर के प्रकार

लोगों को भोजन करने के बाद आनेवाला ज्वर कफज्वर होता है । पाचनक्रिया के दरम्यान जो ज्वर आये वह पित्तज्वर और पाचन के बाद आनेवाला ज्वर वातज्वर होता है । इन तीनों समय जो ज्वर आये वह सन्निपात ज्वर होता है, जिसमें बहुत-से प्रबल दोष मौजूद समझना । अथवा तो जिसमें उपरोक्त तीनों प्रकार के ज्वरों के लक्षण एवं दोष दिखाई दें उसे सन्निपात ज्वर समझना ।

इनके अतिरिक्त दंड, चाबुक, शस्त्र, पत्थर वगैरह के प्रहार के कारण, वृक्ष से गिर जाने या धक्का लगने से - ऐसे किसी विशिष्ट कारण से उत्पन्न ज्वर को आगंतुक ज्वर समझो ।

इन ज्वरों में से किसी एक का भी लक्षण मुझे यहाँ नहीं दिखाई पड़ता। अतः तुम निश्चिंत हो जाओ, इस कन्या का शरीर पूर्ण स्वस्थ है । लगता है कि तुम्हारी पुत्री उद्यानभ्रमण एवं वाहन में ठेल-पेल लगने से थक गई है । शारीरिक परिश्रम का ही ज्वर कन्या के हो ऐसा लगता है । शायद फिर भारी शोक व डर के कारण कुछ चित्तविकार हुआ हो जिससे यह बाला खिन्न हो गई है । इसमें अन्य कोई कारण नहीं है ।'

अम्मा और पिताजी को कारण एवं दलीलों से समझाकर ससम्मान सह बिदाई पाकर वैद्य हमारे घर से चला गया ।

विरहावस्था की व्यथा

तत्पश्चात् भारी शोक से संतप्त हृदया एवं दुःखार्त हुई अम्मा ने सोगंध देकर मुझे दोपहर का भोजन कराया । वनमहोत्सव से लौट आई महिलाएँ भी स्नान, भोजन एवं आनंदप्रमोद के अनेक प्रसंगों का वर्णन करने लगीं ।

मैं नीलरंगी शय्या में अशरण हो सोई किन्तु निद्राविहीन आँखों में वह रात कठिनाई से बीती ।

लोग कहते थे कि अगले दिन मुझे देख जो मदन के बाण से बींध गये थे उनके सैकडों बुजुर्ग पिताजी के पास मेरी मँगनी के लिए आये थे । परन्तु उम्मीदवार रूपवान थे फिर भी शील, व्रत, नियम एवं उपवास के गुणों में वे

सब मेरी बराबरी के नहीं होने से, हे सेठानी ! उन सबका पिताजी ने अस्वीकार किया।

इस विषय की बातों एवं गुणकीर्तन के प्रसंगों में बारबार उसके उल्लेख के कारण मेरा प्रियतम ही मेरी आँखों में आँसू के रूप में उमड आता था। मैं पूर्व भव के मेरे उस देहसंबंध का बारबार स्मरण करती थी इससे मानो मुझ से मेरी भोजनरुचि कोपायमान हो रूठकर चली गई।

हे गृहस्वामिनी ! मैं अत्यंत दुखित हो गई थी इसलिए स्नान एवं सिंगार मुझे जहर-से लगते थे। वडीलों एवं कुटुंबीजनों से मेरा हृदयभाव छिपाने के लिए मैं निरसतापूर्वक ये क्रियाऐ करती रहती थी। यदि मेरे जीवन में मनोरथ की लहरें उमडती न होती तो मैं प्रियतम के संग से बिछुडी एक क्षण भी जीवित न रह सकती।

ऋतु के कारण प्रचंड पवन स्वैर-विहारी होकर भ्रमण-चक्कर लगाता, कामदेव के बाण जैसा, सप्तछद-सौरभित, सुखीजनों को शाता दे रहा था, किन्तु मुझे तो पीडा पहुँचा रहा था।

मदन के शस्त्रप्रहार जैसे लग रहे तिमिरनाशक चंद्रकिरणों का स्पर्श एक क्षण भी सह नहीं सकती थी।

कुमुदवन में अमृतवर्षा जैसी, अत्यंत परितोष देनेवाली शीतल ज्योत्सना भी मानो उष्ण हो मेरे अंगों को दाह पहुँचा रही थी।

हे गृहस्वामिनी, विषयसुख की तृप्ति करानेवाले पाँच प्रकार के इष्ट इन्द्रियार्थ भी मुझे प्रियतम के बिना शोक में डाल देते थे।

तब प्रियतम को पाने के लिए, सब मनोरथ पूरे करानेवाले एक सो आठ आयंबिल करने का मैंने संकल्प किया। सभी दुःखों का नाशक और सारे सुखों का उत्पादक ऐसे उस व्रत को करने की मुझे प्रसन्न करने के लिए वडीलों ने संमति प्रदान की। मैं आयंबिल व्रत करने से दूबली-पतली हो गई हूँ ऐसा मेरे स्वजनों एवं परिजनों ने माना। कामदेव के बाणों से सूखकर मैं कांटा बन गई हूँ यह वे ताड न सके।

चित्रपट का अंकन

इसके बाद हे गृहस्वामिनी ! विरह दुःख से संतप्त मैंने हृदय के शोक से विश्राम पाने के हेतु चित्रकर्म के योग्य एक पट्ट तैयार करवाया । मजबूत बंधन से बंधी, अनुकूल नाप की बारीक बालों की मसृण सुन्दर तूलिकाएँ बनवाईं । वे दोनों सिरों पर तीक्ष्ण नोकवाली, उपस्कृत, सप्रमाण, महीन, स्निग्ध रेखांकन करनेवाली और हाथ में उत्साह-प्रेरक थीं ।

इनके उपयोग से उस चित्रपट्ट पर मैंने चक्रवाकी के भव में मेरे प्रियतम के साथ जो कुछ अनुभव किया था वह सब अंकित किया जिस प्रकार हम खेलते एवं विहरते; जिस स्थिति में मेरा सहचर बींध गया एवं मरा; व्याध ने उसे अग्निदाह दिया; और उसके पीछे जिस रीति से मैंने अनुमरण किया ।

भागीरथी का प्रवाह, समुद्र-सी लहरोंवाली गंगा और उसके तट पर रथांग नाम के विहग-अर्थात् - चक्रवाक, हाथी, मजबूत एवं धनुष्यधारी युवा व्याध - वह सब क्रम पूर्वक चित्रपट में तूलिका से अंकित किया ।

इसके अलावा पद्मसरोवार, अनेक प्रकार के वृक्षों से बनी घनी एवं दारुण अटवी और हजारों कमलोंवाला ऋतुकाल आदि सब चित्रित किया ।

मैं चित्रगत कुंकमवर्ण के मेरे उस मनोरम चक्रवाक को अनन्य चित्त से देखने में तल्लीन हो गई ।

कौमुदीमहोत्सव

उन दिनों विविध गुण-नियमोंवाली, पवित्र शरदपूर्णिमा निकट ही थी । धर्म जैसी कल्याणमयी और अधर्म की प्रतिबंधक उस समय घोषणा की गई । लोगों ने इस व्रताचरण के निमित्त उपवास एवं दान का आरंभ किया । इतने में हे गृहस्वामिनी ! द्विजों की दुर्दशा निवारक एवं धर्मप्रवृत्ति की कारक शरदपूनम का दिन क्रमशः आ गया ।

अम्मा और पिताजीने वर्षाकाल के अतिचार का शोधन किया । मैंने भी पिताजी की इच्छानुसार उपवास, प्रतिक्रमण एवं पारने किये ।

पर्व के दिन दोपहर मैं छत पर गई और स्वर्ग के विमानों-सी शोभा धारण की हुई नगरी को देखने लगी । कलाकारों ने कौशल से चित्रित दूध जैसे धवल,

स्तंभोंवाले, गगनस्पर्शी एवं विमान जैसे भवन मुझे दिखाई पड़े।

दानप्रवृत्ति

सुन्दर भवनों के द्वारों पर सजाये हुए स्वर्णकलश ऐसे लगते थे मानो वे दानेश्वरियों की मुँहमागा दान देने की घोषणा कर रहे हों। लोग यथेच्छ स्वर्ण, कन्या, गाय, भक्ष्य, वस्त्र, भूमि, शय्या, आसन एवं भोजन का दान देते थे।

पिताजी और अम्माने चैत्यवंदन किया और विभिन्न सद्गुणवाले एवं सत्प्रवृत्ति में लगे साधुओं को दान दिया, नौ प्रकारों से शुद्ध, दस प्रकारों के उद्गमदोषों से मुक्त, सोलह प्रकारों के उत्पादनदोषों से रहित ऐसा वस्त्र, पान, भोजन, शय्या, आसन, आवास, पात्र आदि का पुण्यकारक बहुत दान सुचरितों को हमने दिया। हे गृहस्वामिनी ! हमने जिनमंदिरों में भी अनेक प्रकार के मणि, रत्न, स्वर्ण एवं चाँदी का दान किया जिसके फलस्वरूप परलोक में उसका बढ़िया फल प्राप्त हो।

जो कुछ दान दिया जाता है - चाहे शुभ हो या अशुभ - उसका कभी नाश नहीं हो सकता : शुभ दान से पुण्य होता है, तो अशुभ दान से पाप। बहुविध गुणों एवं योग के धनी विपुल तप एवं संयमधारी सुपात्रों को श्रद्धा, सत्कार एवं विनयपूर्वक दिया गया अहिंसक दान अनेक फलदायी श्रेय उत्पन्न करता है। इसका परिणाम उत्तम मनुष्य-भव की शोभारूप ऊंचे कुल में जन्म एवं आरोग्य की प्राप्ति होता है।

अतः हमने तपस्वी, नियमशील, दर्शननिपुणों को दान दिया। सुपात्र को दिया दान संसार से मुक्ति दिलाता है। परन्तु हिंसाचारी, चोर, असत्यवक्ता एवं व्यभिचारी को जो भी अहिंसक दान दिया जाय उसका तो अनिष्ट फल ही प्राप्त होता है।

हमने अनुकंपा से प्रेरित हो उपस्थित सैकडों ब्राह्मणों, दीन-दुखियों एवं भिक्षुकों को दान दिया। लोगोंने शरदपूनम के दिन अनेक दुष्कर नियमों का पालन किया, चार दिन के उपवास किये, दान की वृत्तिवाले हुए, अत्यंत धर्मप्रवण बने।

सूर्यास्त

इस प्रकार नगरी में हो रही विविध चेष्टाएँ जब मैं देख रही थी तब अपने

रश्मिजाल को समेटकर सूर्य अस्ताचल पर उतरने लगा ।

पूर्वदिशारूप प्रेयसी के परिपूर्ण उपभोग से थका-हरा एवं अपनी निस्तेज कान्तिवाला सूरज पश्चिमदिशारूप सुन्दरी के उरोजों पर लुढ़क पड़ा ।

गगनतल में भ्रमण के कारण थका-माँदा सूरज मानो सुवर्णकी डोर समान अपने रश्मि के सहारे भूमितल पर उतरा ।

सूर्य के अस्त होते ही तिमिर कंलकित श्यामा(रात्री) की ओर से सारे जीवलोक को श्यामलता प्रदान की ।

हमने भी मुख्यद्वार के पास एक अनुपम रंगमंडप तैयार किया । वह हमारे निवासस्थान के कर्णफूल एवं राजमार्ग के बाजूबंद समान सुशोभित हो उठा। उसकी एक ओर हे गृहस्वामिनी ! विशाल वेदिका बनाई । उसके ऊपर रत्नकंबल का चंदोआ ताना । वहाँ मेरा वह चित्रपट्ट खडा कर दिया

सारसिका को निगरानी का हवाला

चित्र के स्थान में अपने प्रियतम की खोज के लिए मैंने अपनी विश्वसनीय स्नेहपात्र, और उपकारक सारसिका को नियुक्त किया । मधुर, परिपूर्ण, प्रस्तुत, प्रभावक और रसिक वचन एवं भावों की सुज्ञा सारसिका से हे गृहस्वामिनी ! मैंने इस प्रकार कहा :

"तुम आकृति, इंगित एवं भाव देखकर अन्य का हृदयगत अर्थ समझ सकती हो । तो फिर मेरे प्राणों की रक्षा की खातिर तुम अपने हृदय में इतना धारण करना : यदि मेरा वह प्रियतम इस नगरी में अवतरित हुआ होगा तो इस चित्रपट्ट को देखकर उसे अपना पूर्वभव याद आएगा ।

जिसने अपनी प्रिया के संग में जिन-जिन सुख-दुःखों का पहले अनुभव किया होता है, वे बाद में उसके वियोग में दिखाई पड़ने पर वह उत्कंठित हो उठता है । जगत में इसके अलावा मनुष्य के हृदय में जो गहन से गहनतम प्रिय व अप्रिय गूढार्य होता है वह प्रकट रूप से न कहा जाय तो भी उसकी आँखों के भावों से सूचित हो जाता है । चित्त में उग्र भाव उमड़ा होता है तब दृष्टि भी तीक्ष्ण बन जाती है । चित्त जब प्रसन्न होता है तब दृष्टि निर्मल, श्वेत बनी रहती है । लज्जित व्यक्ति की दृष्टि लौट पड़ी होती है, तो विरक्त व्यक्ति की दृष्टि

मध्यस्थभावमय होती है ।

जिसने भोग में विक्षेप के दुःख का स्वयं अनुभव किया होता है वह मनुष्य पराया दुःख देख दयार्द्र एवं दीन बनता है । बल्कि लोगों में भी यह बात कही जाती है कि पूर्वभव का स्मरण हो आने पर, जो अत्यंत दारुण स्वभाव का होता है उसे भी मूर्च्छा आ जाती है ।

प्रियतम को पहचान लेने का प्रस्ताव

परन्तु मेरे प्रियतम का हृदय तो स्वभावतः वत्सल एवं मृदु ही है । अतः वह इस चित्रपट्ट को देखते ही, यह दुःख तो स्वयं जैसा अनुभव किया था वैसा ही है इतना जानकर अवश्य मूर्छित हो जाएगा । तुरंत उसका हृदय शोकाकुल और आँखें भीगी हो जायगी । वह सत्य वृत्तांत जानने के लिए आतुर हो उठेगा और यह चित्रपट्ट अंकित करनेवाले के विषय में पूछताछ करेगा ।

उसे देखकर, परलोक से भ्रष्ट हो मनुष्ययोनि में अवतरित मेरे प्राणनाथ चक्रवाक को तुम पहिचान लेना । उसके नाम, गुण, रंग, रूप एवं वेशभूषा से यथेच्छ परिचित होकर यदि तुम कल तक मुझे कहोगी तब ही मैं जी सकुंगी। तो, हे सखी ! तब मेरा हृदयशोक नष्ट होगा और मैं कामभोग उसके साथ करके सुरतसुख का आनंद लुटूँगी । परन्तु यदि मेरे अल्प पुण्य के कारण वह मेरा नाथ तुम्हें हाथ नहीं लगा तो मैं जिनसार्थवाह के चिन्हित मोक्षमार्ग की शरण लूँगी । जिसका जीवन प्रिय से विरहित और धर्माचरण से रहित हो, उसका अधिक जीना निरर्थक है ।"

हे गृहस्वामिनी ! प्रियतम के समागम की उत्सुक मैंने चित्रपट्ट लेकर जाने को उद्यत सारसिका को ऐसा मार्गदर्शन दिया ।

स्वप्नदर्शन

सूर्यास्त हुआ और रात अंधकार से घिरने लगी । तब हे गृहस्वामिनी ! मैं पौषधशाला में गई । अम्मा और पिताजी के साथ दैनिक एवं चातुर्मासिक प्रतिक्रमण कर के पवित्र अरिहंतों को मैंने वंदन किया । मैं भूमि पर सोई थी। मेरी शय्या के निकट माताजी बैठी थीं । निद्रा में मुझे एक स्वप्न दिखाई पड़ा उसके अंत में जाग गई । बापुजी से मैंने उस स्वप्न की वात कही :

"सपने में मैंने एक विविध धातुओं से चित्रविचित्र, दिव्य ओषधियों एवं देवलोक के वृक्षों से सुशोभित, गगनस्पर्शी ऊँचे एक रम्य पर्वत को देखा। मैं उसके पास गई और उसके गगनचुंबी शिखर पर चढ़ी। परन्तु इतने में तो मैं जाग पड़ी : तो वह स्वप्न मुझे फलप्रद कैसा होगा ?"

स्वप्नफल

अतः पिताजी स्वप्नशास्त्र के अपने ज्ञान को आधार लेकर कहने लगे, "बेटी तुम्हारा वह स्वप्न मांगलिक एवं धन्य है। स्वप्न में स्त्री-पुरुषों की अंतरात्मा उनके भावि लाभालाभ, सुख-दुःख और जीवन-मृत्यु को छूती है।

मांस, मत्स्य, रक्त टपकते घाव, दारुण विलाप, आग में प्रज्वलित होना, घायल होना, हाथी, बैल, भवन, पर्वत अथवा द्रवते वृक्ष पर चढना, समुद्र या नदी तैरकर पार करना, आदि के स्वप्न दुःख से मुक्ति के सूचक तुम समझो।

पुंल्लिग नामवाली वस्तु की प्राप्ति से पुंल्लिग नामवाले द्रव्य का लाभ होता है। ऐसे नामवाली चीज नष्ट हो जाती दिखाई पड़े तो ऐसे ही नामवाली वस्तु का नाश होता है।

स्त्रीलिंग नामवाली वस्तु की प्राप्ति से ऐसे ही नामवाला द्रव्य मिलता है। ऐसे नामवाली वस्तु अदृश्य हो जाती देखी जाय तो ऐसे ही नामवाली वस्तु लुप्त हो जाती है।

पूर्वकृत शुभकर्म या पापकर्म का जो फल जिन्हें मिलनेवाला होता है उस फलको उनकी अंतरात्मा स्वप्नदर्शन द्वारा सूचित करती है।

रात्री के प्रारंभ में आनेवाला स्वप्न छः महीनों के बाद, मध्यरात्री को आनेवाला तीन मास के बाद, भोर को आनेवाला डेढ मास के बाद और सवेरे आनेवाला स्वप्न तुरंत ही फल देता है।

निश्चित एवं घोड़े बेचकर सोनेवालों के स्वप्न फलप्रद होते हैं। इन स्वप्नों के सिवा के स्वप्न फल दें या न भी दें।

पर्वतशिखर के आरोहण का सपना जो कन्या देखेगी वह उत्तम रूपगुणवाला पति प्राप्त करती है जबकि दूसरों को ऐसे सपने से धनलाभ होता है। अतः हे पुत्री ! एक सप्ताह में तुम उस अतिशय आनंद का प्रसंग प्राप्त करोगी। साथ

साथ तुम्हारा स्वप्न यह भी सूचित करता है कि पतिवियोग से तुम्हें आठ-आठ आँसू रोना भी पड़ेगा ।"

तरंगवती को चिंता

यह सुनकर मेरे मन में आया : "यदि कोई दूसरा पुरुष पतिरूप में मुझे मिलेगा तो जीने की मेरी इच्छा नहीं है । जिसकी स्मृति से मेरा चित्त सराबोर है उसके बिना मुझे इस संसार के भोग भोगने में क्या आनंद ?" इस प्रकार की मुझे चिंता होने लगी । परन्तु गुरुजनों के सामने मेरे मन की उथल-पुथल छिपा रखी - कदाचित् मेरा अंतर्गत यह राज खुल जाये तो....।

मैंने यों सोचा : 'जब तक सारसिका वापस न आ जाए तब तक मैं प्राणों को धारण करूँगी । उससे सारा वृत्तांत सुन लेने के बाद मुझसे यथाशक्य होगा वह मैं करूँगी ।'

माता-पिताने मेरा अभिनंदनपूर्वक सत्कार किया । भूमि-शय्या में से उठकर मैंने सिद्धों की वंदना की । आलोचन एवं रात्री-अतिचार की गर्हा करने के पश्चात हाथमुँह आदि धोये और गुरुवंदना की । इसके बाद हे गृहस्वामिनी, मैं बिना परिचारिका के अकेली ही सागर जैसे 'सचित्त' (१. जलचरमय २. चित्रांकित) मणिकांचन एवं रत्नों से सुशोभित विशाल हर्म्यतल (छत) पर चढ़ी । हे गृहस्वामिनी, संकल्प-विकल्प करती हुई और हृदय में उस चक्रवाक को एकाग्रचित्त से धारण करके मैं वहाँ ठहरी ।

इतने में पूर्व का उद्भावक, ललाई के साथ स्निग्ध किरजावलि फैलाता, किंशुकवर्ण, जग का सहस्ररश्मिदीप सूर्य उदित हुआ । उसने जीवलोक को मसृण कुकुम-द्रव से लीप दिया और कमलसमूह को विकसित किया ।

सारसिका का प्रत्यागमन

उसी क्षण उज्ज्वल भविष्य के लाक्षणिक स्नेहभावपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखती और प्रयास की सफलता से संतुष्ट मुखकमल से हँसती सारसिका आ गई । सुन्दर विनय एवं मधुर वचनों की खान समान वह अपने सिर पर अंजलि रच मेरे पास आ कर इस प्रकार कहने लगी :

"निरभ्र आकाश में चमकते अंधकार-विनाशक शरद के पूरे चन्द्र जैसी

जिसकी मुखशोभा है, जो लम्बी-अवधि से खोया था और हर पल जो तुम्हारे मन में रम रहा है ऐसे तुम्हारे प्रियतम को मैंने देखा। सिंहगर्जना से भयत्रस्त बनी हुई हरिणी जैसे नेत्रोंवाली हे सखी, अब तुम आश्वस्त हो जाओ और उसके संग में आनंदपूर्वक रहकर कामभोगेच्छा पूर्ण करो।"

इस प्रकार बोलती उसे मैंने संतोष से आँखें मूँद, रोमांचित हो, तुरंत हृदयोल्लास से गाढ आलिंगन दिया। मैंने कहा, "प्रिय सखी, पलट गई देहाकृतिवाले मेरे उस पूर्वजन्म के चक्रवाक पति को तुमने कैसे पहिचान लिया?" वह बोली, 'प्रफुल्ल कमल के स्निग्ध गर्भ समान त्वचावाली हे सखी, मुझे उसका दर्शन कैसे हुआ यह वृत्तांत मैं यथाक्रम कहती हूँ, तुम वह सुनो :

सारसिका ने बताया वृत्तांत

चित्रदर्शन

हे स्वामिनी! गत दिन दोपहर के समय जब मैं चित्रपट्ट लेकर जा रही थी तब तुमने शपथ देकर मुझे संदेश दिया था। मैंने वह चित्रपट्ट तुम्हारे घर के विशाल आँगन के निकट के भ्रमरमंडित कमलों से सुशोभित मंडप में रखा। उस समय हे स्वामिनी कमलों को आनंद प्रदान करनेवाला सूर्य जीवलोक से आलोक समेटकर गगन में से अदृश्य हुआ।

इसके बाद हे स्वामिनी! दही के निस्यंद (मक्खन) जैसा, मन्मथ के कंद समान, ज्योत्स्ना की वर्षा करता, रात्रि के मुखचंद्र जैसा, पूरा चाँद निकला। निर्मल गगन-सरोवर में प्रफुल्लित मृगभ्रमर के चरण से क्षुब्ध ऐसे चंद्र कमल-से ज्योत्स्ना-पराग झरने लगा।

तुम्हारे चित्र के प्रेक्षकों में गर्भश्रीमंत भी थे। वे शानदार बहुमूल्य वाहनों में सवार होकर परिजन-परिवार के बडे समूहों के साथ आते थे। तब वे राजा-महाराजा के समान दीखते थे।

परपुरुष की दृष्टि से अस्पृश्य रहनेवाली ईर्ष्यालु महिलाएँ भी रथ में बैठकर रात्रिविहार करने निकल पड़ी थी।

कुछ तेज-तर्रार युवक अपनी मनभावन तरुणियों के साथ हाथ में हाथ पिरोकर पैदल घूम रहे थे।

और कुछ तो अपने मनोनीत मित्रों से मिलने की उत्कंठा से अधीर, अविनय के (पिंड) पुतले जैसे छैले युवक टहल रहे थे ।

नगरी से आ पहुँचे जनसमूह का राजमार्ग पर प्रवाह, वर्षाऋतु में समुद्र से मिलने के लिए उमड़ी महानदियों के जलप्रवाह-सा दिखाई देता था ।

लम्बदेही लोग सुख से देख रहे थे, ठिगने तले-ऊपर नीचे करते थे । मोटे व्यक्ति जनसमूह की भीड में ढकेलाते-ठेले खाते चीख-पुकार मचा रहे थे।

बीचोंबीच कुछ कालिमावाली छोटी लौवाले और तैलशून्य बत्तियोंवाले दीपक-सिर पर छोटी चुटिया रखनेवाले नष्ट से स्नेहवृत्ति अध्यापकों जैसे लगते थे । वे मानो यह सूचित कर रहे थे कि रात अब पूरी होने आई है ।

जैसे जैसे रात अंतिम साँसें लेने लगी, वैसे वैसे चित्रपट्ट को देखने आनेवाले लोग नींद से पलकें भारी हो जाने के कारण कम से कमतर होते जाते थे ।

मैं भी तुम्हारी अत्यंत मानने योग्य आज्ञा के अनुसार वहाँ उपस्थित रहकर दीपक जलता रखने के बहाने लोगों का निरीक्षण कर रही थी ।

एक अनन्य तरुण प्रेक्षक

जब ऐसा देशकाल था तब मनचाहे मित्रवृंद के घेरे में चल रहा कोई स्वरूपवान तरुण चित्रपट्ट देखने आया ।

अंगों के जोड़ उसके दृढ, सुस्थित एवं प्रशस्त थे ।

चरण उसके कच्छप जैसे मृदु थे ।

पिंडलियाँ उसकी माणिक्य जैसी प्रशंसनीय थीं ।

जंघाएँ सुप्रमाण थीं । वक्षःस्थल ऐसा था मानो सुवर्ण की सिल जैसे आयताकार विशाल, मांसल और चोडा था ।

बाहु दोनों सर्पराज के फन जैसे दीर्घ, पुष्ट एवं दृढ थे ।

ऐसा लग रहा था मानो दूसरा हिमांशु, पूर्णिमा के सुधांशु समान अपने मुख से, चन्द्र से भी अधिक प्रियदर्शन होने के कारण स्वैरेणियों के वदनकुमुदों को विकसित कर रहा हो ।

रूप, यौवन एवं लावण्य से समृद्ध श्री के कारण वहाँ उपस्थित तरुणियाँ

उससे सुरतक्रीडा का प्रस्ताव रखने लगी। वहाँ एक भी युवती ऐसी न थी जिसके चित्त में शरदरजनी के अंधकारविनाशक पूर्ण चंद्र-सा वह तरुण प्रवेश पा गया न हो।

'देवों में ऐसा तेजस्वी कोई नहीं होता, इसलिए यह कोई देव तो नहीं जान पड़ता।' इस प्रकार अनेक लोग उसकी प्रशंसा करते थे।

जिसका समस्त शरीर क्रमशः दर्शनीय है ऐसा वह तरुण उस चित्रपट्ट के निकट आाकर देखने लगा और चित्रकला को सराहता हुआ वह बोला:

"चहुँदिश उठते भँवरों से क्षुब्ध जलपूर्ण, स्वच्छ श्वेत तटप्रदेशवाली, यह सागरप्रिया सरिता कितनी सुंदर अंकित की है!

भरपूर मकरंदवाले कमल वनोंसे व्याप्त अनेक कमलसरोवर एवं प्रचंड वृक्षों से घनी, विविध अवस्थाएँ व्यक्त कर रही यह अटवी भी क्या ही सुंदर चित्रित किये हैं!

और वन में शरद से लेकर हेमंत, वसंत, ग्रीष्म तक की ऋतुओं का उनके फूलफल के साथ कितना चारु आलेखन किया है।

यह चक्रवाकयुगल भी परस्पर स्नेहबद्ध एवं विविध स्थितियों में प्रदर्शित कितना रमणीय लगता है! - जल में, तट पर, अंतरिक्ष में और पद्मिनीके निकटस्थ वह निरंतर एक समान अनुराग से खेलता-घूमता आनंद से क्रीडा करता दर्शाया है!

गठीली सुंदर गरदनवाला, स्निग्ध मस्तकवाला, दृढ एवं पलाशपुष्प के ढेर-सी देहवाला चक्रवाक कितना उत्तम दीख रहा है।

वैसे चक्रवाकी भी पतली सुकुमार ग्रीवावाली, तरोताजा कोरंटपुष्पों के ढेर जैसी शारीरिक गठनवाली अपने प्रियतम का अनुसरण करती रसीली अंकित की है।

यह हाथी भी जो भग्न वृक्षों को रौंदता जा रहा है आकृति द्वारा उसके गुण प्रकट हो इस प्रकार प्रमाण की विशालता सुरक्षित रखकर बढ़िया चित्रित किया है। उसे नदी में प्रवेश करता, यथेच्छ नहाता मदमस्त होकर तरबतर शरीर के साथ बाहर निकलता सुंदर अंकित किया है।

यह युवान व्याध भी वैशाखस्थान में स्थित एवं हाथी को पाने के लिए कान तक खींचे धनुष्यधारी बाण बराबर रेखांकित किया है ।

यहाँ तो देखो धान की बाली के सुंदर चमकीले तंतु जैसा केसरी शरीरवाला वह भोला पंछी शिकारी के तीर से कमर में बींध गया दिखाया है ।

और यहाँ पतिस्मरण से व्याकुल एवं करुण स्थिति में घिर गई शालि की बाली जैसी देहदीप्ति से आकर्षक चक्रवाकी है । उसे उल्का की भाँति देह धरती पर गिराती आलेखित की है ।

शिकारीने मर चुके इस चक्रवाक को नदीतट पर अग्निसंस्कार से देखो नामशेष कर दिया ।

और इधर शोकाग्नि से जल रही, करुण दशा में डूबी चक्रवाकी पति के मार्ग का अनुसरण कर आग में प्रवेश करती अंकित है ।

कितना मन लुभावना चित्र है ! शरदपूर्णिमा की सभी दर्शनीय बातों का यह सर्वस्व है । परन्तु इस चित्र का उद्भव कैसे हुआ होगा यह जानना कठिन है ।"

तरुण मूर्च्छित : पूर्वभव स्मरण

कुतूहलवश मित्रों को दिखाते दिखाते यहाँ तक के चित्र में अंकित चरित्र को देख वह तरुण एकाएक मूर्छित हो गया ।

अति दृढ बंधन से छूटकर नीचे गिरते इन्द्रध्वज की भाँति वह अल्प प्रेक्षकों के कारण किंचित् सूने बने धरतीतल पर धमाके के साथ गिर पड़ा । उसके मित्रलोग नजदीक ही थे फिर भी सबका ध्यान चित्रकौशल देखने में लगा होने के कारण उन्हें उसके गिरने का पता तुरंत नहीं चला ।

निश्चेष्ट दशा में उसे गारे-मिट्टी की यक्षमूर्ति की भाँति उन्होंने उठाया और हवादार स्थान में एक ओर रखा । चित्रपट्ट को देखने के कारण वह गिर पड़ा ऐसा वे समझ गये । मैं भी उसके गिरजाने का कारण क्या है यह जानने के लिए वहाँ उपस्थित हो गई ।

मेरा हृदय भी एकाएक संतोषभाव का अनुभव करके प्रसन्न हुआ । लाभालाभ एवं शुभाशुभ की प्राप्ति इसका निमित्त होता है । मैं सोचने लगी, "यदि

वह चक्रवाक यही हो तो कितना अच्छा ! तब तो इस सेठ की पुत्री पर सचमुच बड़ा अनुग्रह हो जाए। शोकसमुद्र में डूब रही, गजसूंढ समान सुंदर उरुवाली उस बाला को इस गुणरत्न के भंडार-सा वर भी प्राप्त हो जाए।"

मैं इस प्रकार जब विचार करती थी, इतने में उस युवक के मित्रों ने उसकी सेवाटहल की। गद्‌गद् कंठ से करुण आक्रंद कर वह इस प्रकार विलाप करने लगा :

"रुचिर कुंकम-सा वर्णवाली, स्निग्ध श्यामनयनी, मदनबाण छोड़ बिह्वल करनेवाली, ओ मेरी सुरतप्रिय सहचरी, तुम कहाँ हो ?

गंगातरंगों पर विहरने वाली, प्रेममंजूषा-सी मेरी चक्रवाकी ! तुम्हारे सिवा उद्भूत यह उत्कट दुःखदर्द मैं कैसे झेल सकूँगा ?

प्रेम एवं गुण की वैजयन्ती-सी, मुझे अनुसरने को, सदा तत्पर मेरा सदा आदर करनेवाली, हा सुतनु ! तुम मेरे कारण क्यों मृत्यु से भेंटी ?" इस प्रकार परिताप करता, प्लावित मुखवाला वह लज्जा को त्याग, दुःख से सर्वांग लोटने लगा।

"अरे ! यह क्या ! तुम्हारा चित्त क्या भ्रमित हो गया है ?"इस प्रकार मित्रों ने उसे पूछा और "तुम ऐसा बेढंगा बोलना बंद करो" कहकर डाँटा।

उसने कहा : "मित्रो, मेरा चित्त भ्रमित नहीं हुआ है।"

"तो फिर तुम ऐसा प्रलाप क्यों करते हो ?" उन्होंने पूछा

तब वह बोला, "लो सुनो ! परन्तु मेरी यह गुप्त बात मन में रखना। इस चित्रपट्ट में जो चक्रवाक का प्रेमवृत्तांत आलेखित है वह सब मैंने ही अपने चक्रवाक के पूर्वजन्म में भुगता है।"

"तुमने यह कैसे भुगता है ?" ऐसा तुम्हारे प्रियतम के मित्रों ने पूछा। अतः उसने कहा, "उस पूर्वजन्म में यह भुगत चुका हूँ इसका मुझे स्मरण हो आया है।" और साथ ही विस्मितवदन सामने बैठे उन मित्रों को, तुमने मुझ से जो कहा था वही अपना अनुभववृत्तांत, उसने रोते-सिसकते, उन्हीं गुणों का वर्णन करते करते कहा।

"व्याध के शर के प्रहार से उस समय जब मैं निष्प्राण हो गया' तब

प्रेमवश मेरे पीछे मृत्यु को गले लगानेवाली उस चक्रवाकी को चित्रपट्ट में देखकर मेरे हृदयरूप वन में दावानल-सा शोक एकाएक प्रदीप्त हो उठा । तदनंतर अनुरागवन में उद्भूत प्रियविरह के करुण दुःख से मन व्यथित होने पर मैं कैसे लुढक पड़ा यह मैं नहीं जानता ।

चित्र देखकर स्मरण हो आने के कारण जो भारी दुःख मैने अनुभव किया वह मैंने संक्षेप में बता दिया । अब से मैंने प्रतिज्ञा की है कि उसके प्रति मेरे प्रेम के कारण अन्य किसी स्त्री को मन में स्थान न दूँगा । यदि उस सुंदरी से मेरा किसी भी प्रकार समागम होगा केवल तो ही मैं मानवजीनव के कामभोगों की अभिलाष करूँगा । इसलिए तुम जाकर पूछताछ करो कि यह चित्रपट्ट किसने अंकित किया है । कोई तो इसकी निगरानी करनेवाला यहाँ होगा ही ।

चित्रकार ने अपने ही अनुभव को आलेखन द्वारा यहाँ प्रदर्शित किया है। अनेक चिह्नों के आधार पर मुझे प्रतीत हुआ है कि यह चित्र कल्पित नहीं है। मैंने पूर्वभव में पक्षी के रूप में उसके साथ जो अनुभव किया था वह उसके सिवा अन्य कोई रेखांकित कर ही नहीं सकता ।

चित्रकार की पहिचान

हे सुन्दरी, यह सुनकर मैं चित्रपट्ट के पास सरक गई, क्योंकि वे लोग यदि कुछ पूछताछ करने के लिए आये, तो मैं उनको उत्तर दे सकूँ । दीपक सहेजने के काम में व्यस्त होऊँ ऐसी चेष्टा मैं करने लगी और पूछताछ करने आनेवाले की प्रतीक्षा करती मैं वहाँ बैठी ।

इतने में व्याकुल दृष्टिवाला उनमें से एक व्यक्ति आया और उसने मुझसे पूछा, "यह चित्रपट्ट अंकित करके सारी नगरी को किसने विस्मित किया है ?"

मैंनें उससे कहा, 'भद्र, इसका अंकन श्रेष्ठी की कन्या तरंगवती ने किया है। उसने कोई विशेष आशय के अनुरूप यह चित्र तैयार किया है। 'यह कल्पित नहीं है।'

इस प्रकार चित्र के सही रहस्य की जानकारी पाकर वह जहाँ तुम्हारा प्रियतम था वहाँ वापस गया । मैं भी उसके पीछे-पीछे गई और एक ओर खड़ी रहकर एकचित्त से उनकी बातें सुनने लगी ।

वहाँ जाकर वह तरुण हँसता, मुस्काता, उपहास के स्वर में बोला, "बच्चा पद्मदेव ! तुम डरो मत, तुम पर गोरी प्रसन्न हुई है। चित्रकार है ऋषभसेन श्रेष्ठी की पुत्री, जिसका नाम तरंगवती है। कहा गया कि उसने अपने चित्त के अभिप्राय के अनुरूप चित्र बनाया है, कुछ भी मन की कल्पना से अंकित नहीं किया। बताया गया कि यह सब पहले वास्तव में घटित हुआ था। मेरे पूछने पर उसकी दासी ने प्रत्युत्तर में मुझको इस प्रकार कहा।"

यह बात सुनकर तुम्हारे प्रियतम का मुख प्रफुल्ल कमल-सा आनंद से खिल उठा और उसने कहा :

" अब मेरे जीने की आशा बंधी है। तब तो वह चक्रवाकी पुनर्जन्म प्राप्त कर श्रेष्ठी की पुत्री ही हुई है। अब आगे इस विषय में क्या करना ? श्रेष्ठी धन के मद से छका हुआ है। अतः उसकी कुंअरी से शादी के लिए जो जो वर प्रस्ताव रखते हैं उनको वह नकारता है। अधिक करुण तो यह है उस बाला के दर्शन पानाभी अशक्य है - किसी अपूर्व दर्शनीय वस्तु की तरह उसके दर्शन पाना दुर्लभ हैं।"

तुरंत उनमें से एकने कहा, 'उसकी प्रवृत्ति क्या है वह हमने देखा-जाना। अतः जिस वस्तु का अस्तित्व है उसे प्राप्त करने का उपाय भी होता है। क्रमशः तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होगा ही और सेठ के पास मँगनी के लिए जाना कोई अपराध नहीं। अब तो हम जाकर मँगनी का प्रस्ताव रखेंगे : कहावत है कि 'कन्या अर्थात् सारे समाज की।' यदि श्रेष्ठी कन्या देने को मना करेगा तो हम उसके घर से बलपूर्वक उठा लायेंगे। तुम्हारे हित के लिए हम चोर बनकर उसका अपहरण कर ले आयेंगे।

यह सुनकर तुम्हारे प्रियतमने कहा, 'उसके कारण मेरे अनेक पूर्वजों की परंपरा से रूढ बनी हुई कुलीनता, शील की सुरक्षा आदि गुणों का लोप तुम लोग मत करना। यदि श्रेष्ठी मेरी सारी संपत्ति के बदले में भी कन्या न देगा, तो भले, मैं प्राणत्याग पसंद करूँगा किन्तु कुछ भी अनुचित आचरण तो कदापि नहीं करूँगा।

सारसिका का वृत्तांत की समाप्ति

तत्पश्चात् मित्रगण उसे घेरकर घर जाने के लिए चल पडे। उसका कुल निश्चित रूप से जान लेने के लिए मैं भी उनके पीछे-पीछे गई।

वह अपने मित्रों के साथ एक ऊँचे, विशाल, पृथ्वीतल के उत्तम, विमान जैसे सर्वोत्तम प्रासाद के भीतर गया। वहाँ उसके माता, पिता एवं जाति के नाम क्रमशः अच्छी तरह जान लिये और मेरा काम निबट जाने पर मैं वहाँ से तुरंत जल्दी वापस लौट पड़ी।

अंतरिक्ष के छोर के प्रदेश में से ग्रह, सितारे एवं नक्षत्र अदृश्य हो गये। इसलिए वह चुन लिये कुमुदवाले एवं सूखे तालाब-सा लग रहा था। बंधुजीवक, जासूद एवं टेसू जैसे रंग का रवि, जीवलोक का प्राणदाता अम्बरांश्व उदित हुआ। इस समय सूर्य ने चारों दिशाओं को स्वर्णिम बना दी हैं। मैं भी तुम्हें प्रिय-समाचार पहुँचा देने के लिए उत्सुक होने के कारण यहाँ आ पहुँची। सुन्दरी, जिस प्रकार मैंने उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया वह तुम्हें कहा। तुम मेरे कथन पर विश्वास करना, मैं तुम्हारे चरणों की कृपा की सौगंद खाती हूँ।

चेटी ने जब बात पूरी की कि तुरंत मैंने उससे कहा कि तुम मुझे उसके माता, पिता और जाति के नाम बताओ।

सारसिका बोली, "सुंदरी स्वामिनी ! बालचंद्र-सा प्रियदर्शन वह तरुण जिसका पुत्र है, उस उन्नतकुलज, शील एवं गुणवान सार्थवाह का नाम धनदेव है। अपनी व्यापारप्रवृत्ति द्वारा उसने समस्त सागर को निःसार कर डाला है, पृथ्वी रत्नशून्य कर डाली है, हिमालय में केवल शिलाएँ ही रख छोड़ी हैं। उसके निर्मित करवाये सभाओं, प्याऊ, बागों, तलाबों, बावलियों एवं कुँओं से समस्त देश एवं विदेश की भूमि एवं गाँवों की शोभा बढ़ गई है। सागरमेखला समस्त पृथ्वी में वह भ्रमण करता है। शत्रुओं के बाधक-प्रतिकारक, अपने कुल के यशवर्धक, विविध गुणों के धारक ऐसे उस सार्थवाह का वह पुत्र है। सुन्दरी, रूप में वह कामदेव-सा, आकृति से इन्द्र-सा नित्य सुन्दर है और उसका नाम पद्मदेव है।"

मैं चेटी के वदनकमल की ओर अनिमेष देखने लगी। प्रेमपियासी मैंने अपने कर्णपुटों से उसके वचनामृत का पान किया। मैंने सारसिका से कहा, 'तुम्हारे धन्यभाग कि मेरे प्रियतम को तुमने देखा और उसकी वाणी सुनी।' यह कहती हुई मैं दोडकर उसके गले लग गई। हास्य से पुलकित होकर मैंने चेटी से कहा, 'मेरा प्रियतम मेरे स्वाधीन है यह जानकर मेरा शोकावेग नष्ट हुआ है।'

इस प्रकार आश्वस्त हो जाने से, हे गृहस्वामिनी ! मैं हर्षोल्लास से अपने

घर में फूली समाती न थी। स्नान किया, बलिकर्म किया एवं पूजनीय अरिहंतों को वंदन किया। इसके बाद उपवास का मैंने पारना सुखपूर्ण चित्त से किया। हे गृहस्वामिनी, उपवास पारने का परिश्रम मैंने शीतल चद्दरवाले गद्दे पर लम्बी तानकर हलका किया।

तरंगवती की मँगनी : अस्वीकार

मैं उससे समागम करने के मनोरथ पालती हुई, उसकी हृदयस्थ मूर्ति से खेलती, हृदयस्थ मूर्ति से मिलकर खेलने प्रिय विधविध मनोरथ पूरे करने के लिए व्याकुल रहती थी। इस बीच एक बार सारसिका दासी मेरे पास से कहीं चली गई और कुछ समय के बाद फिर मेरे पास आई। गर्म-गर्म उसासें भरती, आँखों में छलछलाते अश्रु कष्ट से रोककर, परितप्त मन से वह कहने लगी :

पृथ्वी का प्रवासी वह सार्थवाह धनदेव अपने बंधुजनों एवं मित्रों को साथ लेकर श्रेष्ठी के पास तुम्हारी मँगनी के वास्ते हमारे दीवानखाने में आया था। उसने कहा, "हमारे पद्मदेव से आपकी कन्या तरंगवती ब्याहने का प्रस्ताव लेकर हम आये हैं। आप जो मूल्य माँगेंगे वह हम देंगे।"

यह सुनकर निर्दय श्रेष्ठी ने माँग का अस्वीकार करते हुए ऐसे विवेकहीन कटु वचन सुनाये :

"प्रवास जिसका मुख्य कर्म है, जिसका निज के घर में स्थिर वास ही नहीं, जो सभी देशों का अतिथि जैसा है, उससे मैं अपनी पुत्री कैसे ब्याहूँ? सार्थवाह परिवार अच्छा खासा समृद्ध है फिर भी उसमें रहकर मेरी पुत्री को पतिवियोग में एक गजरे से चोटी बांधकर रहना पड़ेगा, वेदना एवं उत्कंठा में दिन गुजारकर सिंगार करने से दूर रहना पड़ेगा, लगातार रुदन से लाल-भीगे नयन एवं म्लान वदन होकर पत्र लिखने में रत, वह सामान्य जल से स्नान करती रहेगी, उत्सव के प्रसंग पर मलिन अंग समान होकर रहना पड़ेगा। इस प्रकार जीवनभर, यह कहो कि वैधव्य जैसा दुःसह दुःख उसे भोगना पड़े, स्नान-प्रसाधन, सुगंधी विलेपन इत्यादि से वह अधिकतर वंचित ही रहे। इससे अच्छा है कि उसे किसी दरिद्र को देना मैं पसंद करूँ।"

इस प्रकार मँगनी का अस्वीकार हुआ तब भले ही उसका सत्कार हँसकर

किया गया था फिर भी वास्तव में स्पष्ट रूप से उसकी विडंबना की गई होने से वह सार्थवाह खिन्न चित्त होकर लौट गया ।

यह सब सुनकर मैं हिमपात से मुरझाई नलिनी-जैसी हो गई, मेरा सुहाग नष्ट हुआ, हृदय शोकाग्नि से जल उठा और उसी क्षण मेरी सारी कान्ति लुप्त हो गई। शोकावेग जरा मंद होने पर अश्रु टपकती आँखों के साथ, हे स्वामिनी मैंने चेटी से रोते-रोते कहा :

"यदि कामदेव के बाणों से आक्रांत वह मेरा प्रियतम प्राणत्याग करेगा तो मैं भी जीवित न रहूँगी, वह जीवित रहेगा तो ही मैं जीवित रहूँगी । पशुयोनि में जब थी तब भी मैंने उसके पीछे मौत को गले लगाना पसंद किया था तो अब उस गुणवान के बिना क्यों जीती रहूँ ? तो सारसिका, तुम मेरे उस नाथ के पास पत्र लेकर जाओ और मेरे उपरोक्त वचन भी उसे कहना ।"

यह कहकर मैंने प्रस्वेद से भीगती हुई उँगलियोंवाले हाथ से प्रेम से प्रेरित एवं प्रचुर चाटु वचनयुक्त पत्र भूर्जपत्र पर लिखा । स्नान के दरम्यान अंगमर्दन करने की मिट्टी से उसे मुद्रित एवं तिलकलांछित करके वह लेख, थोडे शब्द एवं अत्यंत अर्थगर्भित मैंने दासी के हाथ में दिया और कहा :

सारसिका, तुम प्रेम के अनुरोधपूर्ण और हृदय के आलंबन रूप मेरे ये वचन प्रियतम से कहना : "गंगा के जल में जो तेरे साथ क्रीडा करती थी, वह तुम्हारे पूर्वजन्म की भार्या चक्रवाकी श्रेष्ठी की पुत्री के रूप में जन्मी हूँ। तुमको खोजने के हेतु स्वयं ही वह चित्रपट्ट तैयार कर प्रदर्शित किया था । हे स्वामी, तुम्हारा पता चला इससे सचमुच मेरी कामना फली । हे परलोक के प्रवासी, मेरे हृदयभवन में बसे यशस्वी, तुम्हारे पीछे मृत्यु का वरण करके तुम्हें खोजती मैं भी यहाँ आई । चक्रवाक भव में जैसा प्रेमसंबंध था, वैसा अब भी यदि तुम धरे हुए हो तो हे वीर ! मेरे जीवन के खातिर मुझे तुम हस्तावलंबन दो । पक्षीभव में हम दोनों में परस्पर सैकडों सुखों की खान जैसा स्वभावगत अनुराग जो था, जो रमणक्रीड़ा थी वह तुम याद करना ।"

मेरे सारे सुखों के मूल समान प्रियतम के पास जाने को उद्यत सारसिका से मैंने व्यथित हृदय से यह एवं इसी प्रकार के अन्य वचन कहे । और यह भी कहा :

"सखी ! उसके साथ सुरतसुख का उदय करनेवाला मेरा समागम तुम साम, दाम एवं भेद से भी कराना। मुझसे अभिव्यक्त एवं अनभिव्यक्त, संदेशा के रूप में दत्त एवं अदत्त, जो कुछ मेरे लिए हितकर हो वह सब तुम उसे कहना।"

तत्पश्चात् हे गृहस्वामिनी, वह चेटी मेरे हृदय को लेकर मेरे प्रियतम के पास जाने के लिए रवाना हुई।

चेटी का पद्मदेव के आवास जाना

उसके रवाना होने के बाद मुझे चिंता होने लगी। अल्प समय में सारसिका लौट आई। उसने मुझसे कहा, 'स्वामिनी, तुमने मुझे बिदा करने के बाद मैं राजमार्ग पर पहुँची। वह मार्ग सुंदर गृहों से सुशोभित वत्सदेशकी इस नगरी की माँग जैसा सुंदर लगता था। अनेक चौराहे, चौपाल, शृंगाटक पार करने के बाद मैं एक वैभवमंडित कुबेरभवन जैसे आवास के पास पहुँची।

हृदय में भय के साथ मैं बाहर के कमरे के द्वार के पास जाकर बैठी। अनेक दास-दासियाँ विविध प्रवृत्तियों में व्यस्त थे। वे यह समझे कि मैं यहाँ नियुक्त कोई नई दासी हूँ। अतः मुझसे पूछा, 'कहाँ से आई ?'

सत्य बात छिपाने की कला स्त्रियाँ हमेशा सहज ही सीख लेती हैं। मुझे जो बेतुका बहाना उस क्षण मन में आया वह मैंने कहा : "तुम आर्यपुत्र से मिल आओ" ऐसा आदेश देकर आर्यपुत्र के दास ने मुझे यहाँ भेजी है। मैं नई ही हूँ यह तुम ठीक जान गये।"

अतः द्वार पर निर्गम एवं प्रवेश की निगरानी रखनेवाले सिद्धरथ द्वारपाल ने कहा, सैकडों लोगों में से कोई भी मेरी जानकारी से बाहर नहीं होता।' उसकी सराहना करते हुए मैंने कहा, 'सार्थवाह का घर भाग्यशाली है कि उसका द्वार तुम्हारे जैसे संभालते हैं। आर्य, तुम मुझ पर इतनी तो कृपा करना कि सार्थवाह का जो पुत्र है उस आर्यपुत्र के मुझे दर्शन हो जाय।'

तब उसने कहा, 'मैं इस द्वार की निगरानी का काम जिसे सौंप सकूँ ऐसा कोई प्रतिहार थोडी देर के लिए यदि मुझे मिल जाता है तो मैं स्वयं तुम्हें सार्थपुत्र के दर्शन करवा दूँ।' उसने एक दासी को अपना काम सौंपा और कहा, 'इसे ऊपर की मंजिल पर आर्यपुत्र के पास जल्दी ले जा।'

वह दासी मुझे तुरंत रत्नकांचन जडित फर्शवाली ऊपर की मंजिल पर ले गई। वह राजमार्ग के लोचन जैसा लग रहा था। उसके बीच के रत्नमय गवाक्ष में सुखासन पर बैठे सार्थवाहपुत्र को दिखाकर वह दासी तत्क्षण चली गई। मैं भी हृदय में घबराती तथापि उस चक्रवाक-प्रकरण के सहारे विश्वस्त होकर उसके पास पहुँच गई।

पद्मदेव के दर्शन

एक मूर्ख ब्राह्मणबटुक उसके पास बैठा था। सार्थवाहपुत्र की गोद में चित्रफलक था। वह धनुष्यरहित कामदेव जैसा एवं अत्यंत सुंदर लावण्ययुक्त प्रतीत होता था। नयनों से झरते आँसू चित्रफलक की आकृति बिगाड देते थे। वह नौसिखिये चित्रकार की भाँति बार-बार आकृति बनाता और पोंछ डालता था। तुमसे समागम प्राप्त करने के मनोरथपूर्ण हृदय लेकर, हास्यविनोद से अछूता, वह अपनी देहदशा पर शोक कर रहा था।

ऐसे समय विनय से गात्र नवाकर, मस्तक पर अपने हाथ जोडकर उसके पास जाकर मैंने 'आर्यपुत्र चिरंजीव हो।' तब अरहर जैसे लाल वस्त्रों में सज्ज, वक्र दंडकाष्ठधारक, कर्कशवक्ता एवं तुच्छोदर, उद्धतवदन, गर्विष्ठ, अतिशय मूर्ख, मर्कट-सा अनाडी, अशिष्ट चेष्टा-चोचले कर रहा। गोविष्ठा जैसा निंद्य, लौकी के बीज जैसे बाहर निकले दांतवाला कुंडी जैसे चौडे कानवाला था, केवल देह से वह ब्राह्मण। ऐसा वह अधमाधम बटुक बोला, 'आप प्रथम इस सुन्दर बटुक की वंदना क्यों नहीं करतीं और इस शुद्र की वंदना करती हैं ?'

अतः दाहिना हाथ नवाकर मैंने दाक्षिण्य प्रकट किया और उस बटुक से मैंने कहा, 'आर्य, अहियं अहिवाए ते (मैं तुम्हें अधिक वंदना करती हूँ"- अर्थांतर यह कि "तुम्हारे पाँव के निकट साँप हैं साँप")।' सुनकर वह एकदम मेढक की भाँति छलाँग मारकर कूद पड़ा और पूछने लगा, 'कहाँ है साँप ? कहाँ है साँप ? अरे हमको अब्रह्मण्य ! साँप से घिन होने के कारण मैं उस अमंलकारी को देखना भी नहीं चाहता। कहो, क्या तुम गारूडी हो ?'

मैंने उसे जवाब दिया। 'यहाँ कहीं भी नहीं हैं। तुम निश्चिंत हो जाओ।'

तब वह बोला, 'तो तुमने मुझे "अहियं अहिवाए" क्यों कहा ? मैं उत्तम

ब्राह्मणकुल का, हारित गोत्र का, काश्यप का पुत्र हूँ, छंदोग ब्राह्मण हूँ। गुड, दही, भात का रसिया हूँ। क्या तुमने मेरा नाम कभी नहीं सुना ? इसलिए तुमने प्रथम मेरा अपमान किया और अब मुझे प्रसन्न करने लगी हो ?' इस प्रकार उस मूर्ख ने मुझे लक्ष्य बनाकर कोलाहल मचा दिया।

तब सार्थवाहपुत्र ने उस ब्राह्मण से कहा, 'अरे ओ, तुम कितनी शेखी बघार रहे हो ? यहाँ पधारी इस महिला को निरर्थक अधिक बाधा रूप मत बनो। उचित-अनुचित समय बिन सोचे-समझे बक-बक करनेवाले तुम निकल जाओ यहाँ से, कितने तुम निर्लज्ज हो, अविनीत, असभ्य ब्राह्मणबंधु।

सार्थवाहपुत्र ने उस ब्राह्मण को जब इस प्रकार कटु वचन कहे तब वह मर्कट की भाँति मुँह बनाता वहाँ से चला गया। उसके जाने से मुझे अत्यंत संतोष हुआ : मुझ पर देवों ने कृपा की।

संदेशसमर्पण

तत्पश्चात् सार्थवाहपुत्र ने मुझसे इस प्रकार कहा, 'भद्रे, तुम कहाँ से आई हो ? तुम्हारे आने का प्रयोजन क्या है ? कहो, तुम्हारे लिए मुझे क्या करना है ?'

इस प्रकार उसने जब कहा तब तुम्हारा प्रेमकार्य पूर्ण सफल करने के कर्तव्य से निबद्ध मैं कहने लगी : "हम लोगों की स्वामिनी ने तुम्हारे लिए मेरे द्वारा ऐसे वचन कहला भेजे हैं : "हे कुलचंद्र, विनयभूषण, अपयश-शून्य, गुणगर्वित, यशस्वी, सबके चित्ताकर्षक मेरी यह छोटी-सी विनति सुनो : दिव्यलोक में बसनेवाली अप्सरासुन्दरियों जैसी श्रेष्ठी ऋषभसेन की कुँअरी तरंगवती के हृदयमनोरथों का जिस प्रकार शमन हो और उसका मनोगत कामभाव सफल हो ऐसा करने की तुम उस पर कृपा करो। चक्रवाकभव में जैसा तुम्हारा प्रेमसंबंध था वह अब भी यदि वैसा ही हो तो हे धीर पुरुष, उसके जीवन को तुम्हारे हाथ का सहारा दो।"

तरंगवती के कथनानुसार मैंने तुमको शब्दशः उसका मौखिक संदेश कह सुनाया। उसकी प्रार्थना का पिंडरूप यह पत्र भी तुम स्वीकार करो।

पद्मदेव का विरहवृत्तांत

मैंने जब इस प्रकार निवेदन किया तो वह रुदन के कारण सर्वांग थरथर

काँपने लगा, मुख एवं नयन उद्विग्न हो गये, शोकमिश्रित आँसू ढुलकाता कराहने लगा। इस प्रकार गाढ अनुराग उसका प्रगट दिखाई पड़ा। आँसू से उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई। इसलिए वह कुछ प्रत्युत्तर दे न सका।

दुःख में आश्वासन पाने के लिए गोद में रखे चित्रपट्ट को उसने आँसुओं से धोया। आँखें रुदन से रक्तिम हो गईं। उसने वह पत्र लिया। भौंहें नचाते हुए उसने धीरे-धीरे वह पत्र पढा। पत्र का अर्थ अवगत कर लेने के बाद स्वस्थ होकर प्रसन्न, धीर, गंभीर स्वर में उसने मधुर, स्पष्टार्थी एवं मिताक्षरी वचन मुझे इस प्रकार के कहे :

'मैं अधिक क्या कहूँ ? फिर भी थोडे शब्दों में जो एक सत्य बात कहता हूँ वह तुम सुनो : यदि तुम इस वक्त आई न होती तो निश्चय ही कहता हूँ कि मैं जीवित प्राप्त न होता। सुन्दरी, तुम यहाँ ठीक समय पर एवं यथास्थान आ पहुँची, इसके कारण अब उसके संग मेरा जीवन जीवलोक के संपूर्ण सार का अनुभव करेगा। उग्र शरप्रहारक कामदेव ने जब मुझे निढाल बना दिया था तब तुम्हारे इस आगमन रूप स्तंभ का आधार मुझे मिला है।'

इसके बाद तुम्हारा चित्रपट्ट देखने से उद्भूत पूर्वभव का स्मरण जो तुमने मुझसे कहा था, वह सब उसने मुझसे कहा। मैंने भी उद्यान स्थित कमलतलैया में चक्रवाकों को देख तुम्हें हो आये पूर्वभव के स्मरण की बात प्रारंभ से उसे पूरी कही।

उसने कहा, 'चित्रपट्ट देखकर मेरे हृदय में पूर्वजन्म के गहरे अनुराग के कारण जब शोक छा गया। अतः सारी रात के भ्रमण के बाद एकाएक प्रिय मित्रों के साथ घर लौटा तो उत्सव की समाप्ति होने पर जिस प्रकार इंद्रध्वज टूट कर गिर पड़ता है वैसे मैंने शय्या में जोर से शरीर को पटक दिया।

मैं गर्म निःश्वास छोड़ने लगा, शून्यमनस्क बन गया, मदन से मथा जा रहा था, जल से बाहर पड़ी मछली की भाँति मैं शय्या में दुःख से छटपटाने लगा।

तिरछी दृष्टि से देखता रह जाता, कभी भौंह उठाकर बकवास करने लगता, घडी में हंसता तो घडी में गाता तो कभी मैं पुनः पुनः रोया करता।

मेरे अंग अतिशय काम से उत्तप्त थे। मुझे प्रिय मित्रोंने निढाल देखकर

लज्जा का त्याग करके मेरी माता से यह विनती की : 'यदि येनकेन प्रकारेण श्रेष्ठी की पुत्री तरंगवती की मँगनी आप लोग तय नहीं करेंगे तो पद्मदेव परलोक का मेहमान बन जाएगा ।

इसके बाद मुझे पता चला कि यह बात अम्मा से ज्ञात होने पर बापुजी श्रेष्ठी के पास इस काम के लिए गये थे, परन्तु श्रेष्ठी ने मँगनी की बात ठुकरा दी । अम्मा एवं बापुजी दोनों मुझे समझाने लगे, "बेटे ! यह कन्या हमें अप्राप्य है । इसके सिवा और कोई कन्या तुम्हें पसंद आई हो तो उसकी मँगनी की बातचीत हम चालाएँ ।"

प्रणाम कर मैंने उनका आदर किया, भूमि पर ललाट टेक, अंजलिपुट रचकर लज्जा से नीचा मुँह करके विनय जताकर कहा : "आपकी जो आज्ञा होगी, उसका मैं पालन करूँगा । उसके बिना क्या नहीं चल सकता ?" यह कहकर मैंने गुरुजनों को निश्चिंत किया और इससे वे शोकमुक्त हुए ।

उनके वे वचन सुनने के बाद, हे सुन्दरी, मरने की ठानकर मैं रात होने की प्रतीक्षा करने लगा । उसके समागम की आशा न रही तब मैंने सोचा, 'अधिक लोगों की उपस्थिति में दिन में मृत्यु से भेंटने में मुझे विघ्न आने का संभव है इसलिए सब लोग सो जाने के बाद मैं जो कर सकूँगा वह करूँगा ।'

इस प्रकार मन में पक्का निश्चय करके मैं आकार संवरण कर शान्त रहा । जीने के विषय में मैं निःस्पृह बन चुका था, मरने के लिए संनद्ध हुआ था । पिताजी के परिभव एवं अपमान से मेरे वीरोचित अभिमान को ठेस पहुँची थी; और बुजुर्गों के प्रति आदर एवं भक्ति के कारण अब मेरा कर्तव्य एवं धर्म क्या है यह मैं समझ गया था ।

इतने में तुम इस आवास में प्रियतमा के वचनों का - हृदय को उत्सव समान और मेरे जीवन के लिए महामूला अमृत जैसे वचनों का - उपहार लेकर आ पहुँची । तरंगवती के करुण वचन सुनकर मेरा चित्त शोक एवं विषाद से भर आया है और आँखें आँसुओं से छलछला गई हैं इसलिए मैं उसका पत्र साफ साफ पढ़ भी नहीं सकता ।

परन्तु मेरे ये वचन तुम उसे कहना : "मुझे तुमने तुम्हारे अनुमरण से मोल

लिया है। इसलिए मैं सचमुच ही तुम्हारे चरणों का दास बनकर तुम्हारे संग बसूँगा। तुम्हारा चित्रपट्ट देख मुझे पूर्वजन्म के वृत्तांत का स्मरण हुआ है। मेरे पुण्य कम पड़े, जिससे मुझे तुम्हारी प्राप्ति नहीं हुई। इससे मेरा चित्त विषादपूर्ण हो गया है। तुम्हारी बात सुनते-सुनते निरंतर स्नेहवृत्तिमय मैं प्रीति के रोमांच से कदम्ब-पुष्प की भाँति कंटकित हो उठा।"

चेटी का प्रत्यागमन

इस प्रकार तुम्हारे साथ के सुरत के मनोरथ की बातों में मुझे लम्बे समय तक रोक रखने के बाद कामबाण से जर्जरित देहवाले पद्मदेव ने अनिच्छा से मुझको बिदा किया।

बिदा होकर मैं उस अनुपम प्रासाद से निकली तब मुझे लगा कि मैं स्वर्ग से ढकेल दी गई हूँ। जिस मार्ग से गई थी उसी मार्ग से मैं लौट आई। उसके भवन की समृद्धि, वैभव,-विलास एवं विस्तार-विशालता के समान एक श्रेष्ठी के भवन को छोड कदाचित् अन्य किसीके नहीं होंगे। मैं अब भी उसके भवन की समृद्धि, विलास, परिजनों की विशेषता, एवं उसका अनन्य रूप मानो प्रत्यक्ष देख रही हूँ। और हे स्वामिनी, उसने तुम्हारे लिए यह प्रत्युत्तर पत्र दिया है, जो समस्त गुणयुक्त एवं प्रेमगुण का प्रवर्तक हँसीखुशी के पात्र समान है।

हे गृहस्वामिनी, मेरे प्रियतम के साक्षात् दर्शन-तुल्य वह मुद्रांकित पत्र मैंने उससे लिया और निःश्वास के साथ मैं उसके गले लग गई।

चेटी से सुनने को मिले वचनों से मैं उत्फुल्ल चंपकलता की तरह हास्यपुलकित हुई और पत्रगत अर्थ जानने के लिए आतुरता से उस पत्र की मुद्रा तोडी। त्वरा से मैंने प्रियतम के वचनों की खान समान उस पत्र को खोला।

उसमें वही का वही प्रकरण था, केवल मेरी मृत्यु की बात उसमें नहीं थी। जो कुछ मैंने अनुभव किया था और उसने जो कुछ किया था वैसा ही लेखन के रूप में अक्षरबद्ध किया हुआ था। उसकी मृत्यु प्रथम हुई और मेरा अनुमरण उसने न जाना यह भी उचित था।

भूर्जपत्र पर लिखा गया, प्रियतम के पास से आया हुआ वह लेख अपने भग्नहृदय से, मैं पढने लगी। जिस-जिस समय हमारी जो जो दशा थी सो प्रत्येक

जिस प्रकार हुई उसी प्रकार ठीकठीक, निशानियों के साथ प्रियतम ने शब्दों में उनका वर्णन किया था। शब्ददेहधारी मन्मथ एवं बंधन में निबद्ध वचनदेहधारी कामदेव को अर्थ द्वारा मैं निरखती रही।

पद्मदेव का प्रेम पत्र

'यह पत्र मेरी हृदयनिवासिनी तरंगवती नाम की सुन्दरी को ही देने के लिए है : शिकारी मदन के हाथ में पड़ी हिरनी जैसी, अनंग के धनुष्य-सी, शोचनीय शरीरा, सुविकसित सरोजमुखी उस बाला के आरोग्य एवं कुशलक्षेम की मेरी ओर से शुभकामना।

हे प्रिये कामदेव की कृपा से मेरे एवं तुम्हारे बीच के प्रेम का चिंतन होता रहने से यहाँ लेश भी असुख नहीं है। फिर भी हे तरंगवती, अनंगशरप्रहार से पीडित मैं तुम्हारी अप्राप्ति के कारण मेरे शिथिल हुए कोमल अंगों को किसी भी प्रकार धारण नहीं कर सकता।

तुम जो जानती हो उन सब कुशलसमाचार को निवेदित करने के अतिरिक्त हे कमलदल समान विशाल एवं सुन्दर नयनवाली तुमसे मेरी यह विनति है : हे प्रफुल्ल एवं कोमल कमल-सा वदनवाली, पूर्वभव के प्रेमप्रसंगों में व्यक्त हुए तुम्हारे गाढ प्रणयानुराग से उद्भूत कामना से मैं जल रहा हूँ। अज्ञान-अंधकार से परिपूर्ण एवं विविध योनियों से भरपूर इस सृष्टि में परलोक से निर्वासित प्रेमियों का एकदूसरे के साथ मिलना दुर्लभ होता है। हे चित्तनिवासिनी, मैं मित्रों एवं बांधवों के बलसामर्थ्य द्वारा भरसक प्रयास करके तुम्हारी प्राप्ति के लिए सेठ को जब तक प्रसन्न करूँ तब तक हे विशालाक्षी तरुणी, इस अल्पावधि में तुम गुरुजनों की प्रीति की सुखद कृपा की आशा धारण करके प्रतीक्षा करना।

तरंगवती का विषाद

'हे गृहस्वामिनी, इस प्रकार उसके पत्र के विस्तृत अर्थ का मैंने तात्पर्य ग्रहण किया। उसका जो मध्यस्थभाव था वह ज्ञात करके मैं खिन्न एवं सन्न हो गई। जांघ पर कोहनी टेक, खुली हथेलियाँ में मैंने मुँह ढंक दिया और निश्चल नयनों से किसी बात में ध्यान लगाकर मानो बैठी हूँ ऐसी दशा मैंने धारण कर ली।

तब उचित विनयविवेकविशारद चेटी करकमलों से अपने मस्तक पर अंजलिपुट रचकर मुझे कहने लगी, 'सुंदरी, चिरकाल सेवित मनोरथ पूर्ण करनेवाला, जीवित को अवकाशदायक, संतोष का सत्कार करनेवाला, प्रेमसमागम एवं सुरतप्रवृत्ति का साररूप यह पत्र तुम्हें उसने ही भेजा है, यह बात निश्चित है। प्रियवचनों के अमृतपात्र समान वह पत्र तुम्हारे शोक का विपक्षी मल्ल है इसलिए तुम विषाद न धरो। हे प्रियंगुवर्णी, भीरु, सुरत-सुखदाता प्रियजन का समागम तुम्हें अल्प समय में होगा।'

चेटी का आश्वासन

परन्तु इस प्रकार चेटी ने जब कहा, तब हे गृहस्वामिनी, मैंने कहा, 'हे सखी, सुन लो किस कारण से मेरे मन में विषाद उत्पन्न हुआ यह। मुझे लग रहा है कि उसके चित्त में मेरे प्रति स्नेहभाव कुछ मंद पड़ा है, क्योंकि वह मेरा समागम करने के विषय में कालप्रतीक्षा करने को कहता है।'

यह सुनकर हे गृहस्वामिनी, चेटी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर फिर मुझसे कहने लगी, 'हे स्वामिनी, तुम से मेरी प्रार्थना है कि तुम मेरी बात समझो। उत्तम पुरुष किस प्रकार व्यवहार करते हैं यह सुनो। कुलीन एवं ज्ञानसम्पन्न होते हुए भी अनुचित आचरण को जो नहीं रोकते उनका लोगों में उपहास होता है। जिस प्रकार उचित उपचार बिना गाय दुहनेवाले को दूध नहीं मिलता, उसी प्रकार संसार में उचित उपाय के बिना अन्य कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

जो काम पर्याप्त बिना सोच-समझे, उतावली में उचित उपाय किये बिना प्रारंभ किये जाते हैं वे यदि पूरे हो जाये तो भी परिणाम कुछ नहीं दे सकते। जब कि योग्य उपाय से आरंभ किये काम यदि पूर्ण न भी हों तो भी लोग उसके करनेवाले की निंदा-आलोचना नहीं करते।

तीक्ष्ण कमबाणों के प्रहार से पीडित वह धीर पुरुष संकट में होते हुए भी अपने कुल एवं वंश का अपयश होने के डर से सन्मार्ग छोडना नहीं चाहता।

तरंगवती की कामार्तता

इस प्रकार चेटी के साथ उसकी बातें करने में उसमें रसबस चित्त हुई मुझको पता भी न चला कि कमलों को जगानेवाले सूर्य का अस्त कब हुआ।

ततपश्चात् हे गृहस्वामिनी, मैं त्वरा से नहा लेने के बाद भोजन करके चेटी, धात्री एवं परिजनों के साथ छत पर चढ गई। वहाँ उत्तम शयन एवं आसन पर आराम करती हुई प्रियतम की बातों से मन को बहलाती मैं रात्रि के प्रथम प्रहर की प्रतीक्षा करने लगी।

अल्प समय में चंद्ररूपी मथानी शरदऋतु के सौन्दर्य से मंडित गगनरूपी गागर में उतरकर उसमें रखे ज्योत्स्नारूपी मही का मथन करने लगी। उसे देख मेरे चित्त में अधिक घनिष्ठ एवं दुःसह विषाद छा गया और आरे की भाँति तीव्र काम मुझे सताने लगा।

पद्मदेव से मिलने को जाने का निश्चय

कामविवश एवं दुःखार्त अवस्था के कारण मैं अतिशय व्याकुल हो गई और अपनी सखी से कहने लगी : सखी, इस प्रार्थना द्वारा मैं तुम्हारे पास प्राणभिक्षा की याचना करती हूँ। मैं सच कहती हूँ बहन, कुमुदबंधु चंद्र द्वारा अत्यंत, प्रबल बैरी बनकर कामदेव मुझे निष्कारण कष्ट दे रहा है। उसकी शत्रुता के कारण हे दूती तुम्हारे मीठे वचन भी झंझा के थपेडों से क्षुब्ध समुद्रजल के समान मेरे हृदय को स्वस्थ नहीं कर सकते।

इसलिए सारसिका, काम द्वारा चारित्रभग्न ऐसी असती को, उसके दर्शन की प्यासी को तू जल्दी मुझे प्रियतम के आवास ले जाओ।

अतः चेटीने मुझसे कहा : 'तुम्हारी यशस्वी कुलपरंपरा का तुम्हें जतन करना चाहिए। तुम ऐसा दुःसाहस मत करो और इस प्रकार उपहासपात्र मत बनो। वह तुम्हारे स्वाधीन है; उसने तुमको जीवनदान दिया ही है तो तुम अपयशभागी बनने की बात छोड दो। बडों को प्रसन्न करके तुम उसे प्राप्त कर सकोगी।'

परंतु स्त्रीसहज अविचारिता एवं अविवेक के कारण और कामवेग से प्रेरित होकर मैं फिर चेटी से कहने लगी, 'संसार में जो उत्साहपूर्वक, दृढ संकल्प के साथ निंदा एवं अपराध होने की उपेक्षा करके निर्भय बन जाता है वही अमाप लक्ष्मी तत्काल प्राप्त करता है। कोई भी भगीरथ काम कठिनता के कारण अवरुद्ध प्रवृत्ति हो जाए वह भी जब काम का आरंभ कर देते हैं तो आसान बन जाता है।

प्रियतम के दर्शन करने को आतुर मुझे यदि तुम उसके पास न ले जाओगी तो कामबाण से विद्ध मैं इसी समय तुम्हारे सामने मौत के हवाले हो जाऊँगी। इसलिए तुम बिलंब न करो। मुझे त्वरा से प्रियतम के पास ले जाओ। यदि तुम मुझे मृत नहीं देखना चाहती हो तो यह अकर्तव्य काम भी करो।'

मैंने इस प्रकार जब कहा तब उस चेटीने बहुत टालमटूल की किन्तु मेरे प्राणों की रक्षा के उद्देश्य से प्रियतम के आवास जाने का उसने स्वीकार किया।

प्रियमिलन के लिए प्रयाण

इससे मेरा मन आनंदित हुआ। तुरंत मैंने कामदेव के धनुष्य जैसे आकर्षण के साधन, सौन्दर्यसाधक आभूषण व सिंगार झटपट धारण किये। मेरे नेत्र प्रियतम की श्रीशोभा के दर्शन को कब के तरस रहे थे। मेरा हृदय अत्यंत उत्सुकता का अनुभव कर रहा था। यद्यपि मैं दूती ने ब्योरे के साथ वर्णित प्रियतम के आवास पर हृदय से तो पहले से तत्क्षण पहुँच गई किन्तु पाँवों से जाने के लिए बाद में रवाना हुई।

मैंने कटितट पर रत्नमेखला और पैरों में नूपुर धारण कर लिये। चरण मेरे रुनझुनाते थे, गात्र काँप रहे थे। हम एकदूसरे का हाथ पकडकर दोनों बगल के द्वार से बाहर निकलीं और वाहन एवं लोगों की भीड से राजमार्ग ठसाठस था वहाँ पर हम उतरीं

अनेक हाट-बाजार, प्रेक्षागृह एवं नाट्यशालाओं से खचाखच कौशाम्बी का वह राजमार्ग वैभव में स्वर्ग का अनुकरण करता लग रहा था। उस पर हम आगे बढने लगीं।

आसपास अनेक, वस्तुएँ सुन्दर एवं दर्शनीय थीं लेकिन मैं प्रियतम के दर्शन के लिए अत्यंत आतुर थी इसलिए मेरा चित्त उनसे आकर्षित न हुआ। लम्बे समय के बाद आज प्रियतम के दर्शन होंगे इस उमंग में हे गृहस्वामिनी चेटी के साथ जाने में मैंने थकान की उपेक्षा की। कभी हम वेग से दौडती, सरकतीं, कभी भीड के कारण धीमा वेग कर लेतीं। इस प्रकार बहुत कठिनाई झेलते हुए, फूले दम प्रियतम के आवास हम पहुँचीं।

प्रियतम के दर्शन

प्रियतम भवन के मुख्य द्वार पर आसपास मित्रों से घिरा आराम से बैठा था । दासीने मुझे एकांत स्थान में ठहराकर उसको बता दिया - सबके मन हरनेवाला, वह रात्रि के समय अनेक दीपमालाओं के बीच मानो ज्योत्स्ना प्रवाह बहानेवाला उदित शरच्चंद्र ।

उसे देखकर कज्जल से श्यामवर्णी मेरी आँखें आँसुओं से भर गईं । मेरे नेत्रों की तृषा उसे देखते छिपती न थी । दीर्घ काल के पश्चात् देख पाई इसलिए चक्रवाकयोनि से परिवर्तित इस रूप को उस पहले की कमी को पूरी करने के लिए वे निरंतर देखा करना चाहती थीं । परन्तु वे आँसुओं से छलछला गई थीं इसलिए दीर्घकाल देखती रहने पर भी निरंतर देख न सकीं ।

प्रियतम को देखा इसलिए आनंद-हर्ष से पुलकित मैं वहाँ एक ओर खडी रही । सहमी हुई एवं लज्जित हम दोनों अंदर प्रवेश करने में डर रही थीं ।

इतने में हमारे सद्भाग्य से उसने अपने मित्रों को 'आप सब कौमुदीविहार देखिए, मैं तो अब शयन करूँगा' यह कहकर विदा किया । उनके जाने पर मैंने चेटी से कहा, *'आओ अब हम उस चक्रवाकश्रेष्ठ से मिलने के लिए श्रेष्ठी के घर में चलें।'*

मैं जाकर भवन के आँगन के एक कोने में धडकते हृदय से खडी हो गई । दासी जाकर उससे मिली । मैंने देह पर वस्त्राभरण ठीक किये और उस देहधारी कामदेव से मिलने के लिए आतुर मैं प्रियतम को मन भर के देखने लगी।

चेटी को विनय से हाथ जोड़कर वहाँ खडी देखकर अत्यंत आदरभाव से एवं हडबडाता हुआ प्रियतम त्वरा से खडा हो गया । जिस जगह मैं लज्जा से सहमी हुई गुप्त रूप से खडी थी उसी ओर उसने चेटी के साथ कदम बढाये।

उसके नेत्र हर्षाश्रु से सजल हो गए, दूती की उँगली उसने पकड़ ली और संतोष की स्पष्ट झलक मुख पर आ गई । वह कहने लगा :

'मेरी जीवनसरिता के बाँध-सी, सुख की खान जैसी, मेरे हृदयगृह में बसी हुई, मेरी वह सहचरी तुम्हारी स्वामिनी कुशल तो है न ? मदनबाण के प्रहार से विद्धहृदय मुझे तो उसका समागम करने के मनोरथों के तनाव के कारण तनिक भी सुख नहीं ।

हे दूती, बहाना बनाकर प्रियमित्रों को यह कहकर विदाय कर दिया कि तुम सब कौमुदीविहार देखने जाओ। मित्रों को छोड आने के बाद मैं प्रियाविरह की व्यथा से कुछ राहत पाने के लिए, तुम्हारे आवास के पास जाकर चित्रपट्ट देखने की सोच ही रहा था कि उसी क्षण मैंने तुम्हें मेरे आवास में आयी हुई देखी और इससे मैं सन्तुष्ट हो गया और मेरा हृदयशोक दूर हो गया। कहो दूती प्रियतमा ने जो तुम्हें कहा हो वह मैं सुनने को आतुर हूँ।

तब चेटी ने उससे कहा, 'उसने मेरे साथ कोई संदेश नहीं भेजा, पर वह स्वयं तुम्हारे पास आई है, इसलिए वही तुमसे विनति करेगी। हे स्वामी, इतने समय तक तो उसने कष्ट से धीरज रखी, तो उस कामातुर का तुम पाणि ग्रहण करना। तरंगों से उछलती गंगा जैसे समुद्र के पास जाती है वैसे हे पुरुषसमुद्र, पूर्वजन्म के अनुराग-नीर से भरी यह तरंगवती कन्यासरिता तुम्हारे पास आई है।'

प्रेमियों का मिलन

उस समय हे गृहस्वामिनी, मुझे भी अत्यंत घबराहट होती थी। परिश्रम के कारण मेरे अंग पसीने से तरबतर थे। एकदम आनंदाश्रु उमड़ आये। मैं काँपती हुई उसके चरणों में गिरने को उद्यत हुई, कि प्रियतम ने विनय से मुझे हाथी की सुंड जैसी उसकी सुखद भुजाओं से उठा ली। गाढ आलिंगन देकर देर तक आँसू बहाने के बाद वह कहने लगा, 'हे मेरी शोकनाशिनी स्वामिनी तुम्हारा स्वागत हो।'

विकसित कमलसरोवर में से बाहर आई हुई परन्तु कमलशून्य करवाली लक्ष्मी समान मुझे वह हास्य से विकसित सुन्दर मुखकमलवाला अनिमेष नेत्रों से देखता ही रहा।

मैं भी लज्जानत, अर्धतीरछे मोडे हासपुलकित अंगों से उसे क्षोभपूर्वक तीरछे नेत्रों से कटाक्षपूर्वक देखने लगी थी और जब उसकी दृष्टि मुझ पर पडती तब मैं अपनी दृष्टि नीची ढाल लेती थी। प्रियतम का सब अवस्थांतरों में सुंदर एवं अतिशय कान्तिपूर्ण रूप देखकर मेरी कामना परिपूर्ण हुई।

उसके दर्शन से उद्‌भूत, प्रीतिरूप धान्य को उत्पन्न करनेवाली, परितोषरूपी वृष्टि से मेरा हृदयक्षेत्र सराबोर हुआ।

तरंगवती के साहस के कारण पद्मदेव चिंतित

तत्पश्चात् प्रियतमने मुझसे पूछा, 'तुम ऐसा साहस क्यों कर बैठी?' हे कृशोदरी, मैंने तुमसे कहा तो था कि गुरुजनों की संमति मिले तब तक प्रतीक्षा करना।

तुम्हारे पिता राजा के स्नेपात्र हैं, श्रीमंत हैं, व्यापारियों के मंडल में उनके वचन का आदर है, मित्रमंडल उनका बहुत विस्तृत है और वे नगरसेठ भी हैं।

इस अविनय का पता लगते ही वे तुम्हारे गुण-विनय में बाधारूप बनेंगे। साथ-साथ मुझ पर रूठकर मेरे समूचे कुल का निकंदन कर डालेंगे।

इसलिए उन्हें तुम्हारे यहाँ आने का पता लगे इससे पहले तुम अपने घर लौट जाओ। मैं किसी उचित उपाय से तुम्हारी प्राप्ति हो ऐसा कुछ करूँगा। हे सुन्दरी, हम यदि गुपचुप भाग जाएँ तो भी तुम्हारा पिता कडी निगरानी रखनेवाले गुप्तचरों द्वारा सब मालूम कर लेंगे इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

भाग जाने का निर्णय

उसी समय कोई पुरुष राजमार्ग पर गीत गाता हुआ गुजरा। हे गृहस्वामिनी उसके गीत में यह अर्थ समाया हुआ था :

'सहज सामने से चली आई प्रियतमा, यौवनावस्था, संपत्ति, राजलक्ष्मी एवं वर्षाऋतु की चाँदनी-इन पाँच वस्तुओं का तत्काल उपभोग कर लेना चाहिए।

स्वयं जिसको चाहता हो, वह प्रियतमा प्राप्त हो जाने पर जो मनुष्य उसे ठुकराता है वह मानो स्वयं आई ललित लक्ष्मी को ठुकराने के समान है।

जीवन के सर्वस्व जैसी अत्यंत दुर्लभ प्रियतमा दीर्घकाल बीतने पर यदि प्राप्त करने के बाद कोई हाथ से उसे जाने देता है तो वह सच्चा प्रेमी नहीं है।'

यह सुनकर हे गृहस्वामिनी, गीत के मर्म से उसे ठेस पहुँची इसलिए संपूर्ण निर्मल शरच्चंद्र समान मुखवाला वह मेरा प्रियतम कहने लगा, 'प्रिये, दूसरा विचार यह भी है कि यदि हम इसी समय कहीं परदेश चले जाँय, तो वहाँ रहकर लम्बे समय तक निर्विघ्न आनंद में जीवन गुजार सकें।'

तब रोते - रोते मैंने कहा, 'हे नाथ, अब लौटकर वापस जाने की मेरे

बसकी बात नहीं । मैं तो तुम्हारा ही अनुसरण करूँगी । तुम कहो वहाँ भाग जाएँ ।'

तत्पश्चात् मुझे विविध अन्य उपायों को उसने कहा किन्तु मैं कृतनिश्चय हूँ ऐसा जानकर उसने कहा, 'तो हमें जाना ही चाहिए । इसलिए मार्ग में उपयोगी हो सके ऐसा कुछ पाथेय ले लूँ । यह कहकर वह अपने घर के भीतर के भाग में गया । इस ओर मैंने भी चेटी को मेरे आभूषण ले आने के लिए रवाना किया ।

प्रेमियों का पलायन

दूती को साथ में लिये बिना प्रयाण

दूती हमारे आवास की ओर जाने को तेज रफ्तार से रवाना हुई । इतने में तो मेरा प्रियतम हाथ में रत्नकरंडक लेकर लौटा ।

उसने कहा : 'हे कमलपत्राक्षी ! चलो, अब रुके रहने के लिए समय नहीं । जब तक श्रेष्ठी को पता चले इस बीच तुम भाग सकती हो ।'

मैं लज्जित होकर बोली, 'मैंने चेटी को आभूषण ले आने को भेजी है, वह लौट आए तबतक थोडी देर हम रुकें ।

उसने कहा : सुन्दरी, शास्त्रकारोंने अर्थशास्त्र में कहा है कि दूती सदैव पराभव की दूती ही होती है, वह कार्य सिद्ध करनेवाली नहीं होती । उस दूती द्वारा ही हमारी गुप्त मंत्रणा खुल जाएगी । तुमने उसे क्यों भेजा ?

स्त्री का पेट छिछला होता है । अधिक देर तक उसमें रहस्य टिक नहीं पाता । कुसमय में आभूषण लेकर आ रही वह कदाचित पकडी गई तो हमारा भेद खुल जाएगा और हमारी भाग जाने की योजना गुड गोबर हो जाएगी यह निश्चित है ।

इसलिए वह पकडी जाए इससे पहले इसी क्षण ही भागना पड़ेगा । समय नष्ट किये बिना चल पड़नेवाले का काम निर्विघ्न बन जाता है ।

और मैंने मणि, मुक्ता एवं रत्नजडित आभूषण ले लिये हैं । मूल्यवान अन्य सामग्री, मोदक आदि भी लिये हैं । तो चलो हम भागने लगें ।' उसने जब इस प्रकार कहा तब उसकी इच्छा के वश होकर, हे गृहस्वामिनी, मैं सारसिका की प्रतीक्षा किये बिना सत्वर रवाना हुई ।

लोगों के आने-जाने के कारण सारी रात नगरी के द्वार खुले देख हम वहाँ से बाहर निकल गये और सीधे हम यमुनातट पहुँचे ।

वहाँ रस्से से खूंटे के साथ बंधी नाव हमने देखी । वह हलकी, द्रुत गति सक्षम, चौडी, अछेद तलवाली थी ।

उसे बंधन से खोल हम दोनों सत्वर उसमें चढ बैठे । मेरे प्रियतम ने उसमें रत्नकरंडक रखा और बल्ला सम्हाला । नागों एवं यमुना नदी को प्रणाम करके हम समुद्र की ओर बहते यमुनाप्रवाह में आगे बढने लगे ।

अपशुकन

ठीक उसी समय चोपायों के बंदीजन जैसे निशाचर सियार हमारी दायीं दिशा में शंखनाद-सा उद्घोष करने लगे ।

यह सुनकर प्रियतम ने नाव रोकी और मुझसे कहा, 'सुन्दरी, थोडी देर हमें इस शकुन का आदर करना होगा । बायीं ओर भागकर जाते सियार कुशल करते हैं, दायीं ओर भागकर जाते घात करते हैं, पीछे की ओर जानेवाले प्रवास रोक लौट पड़ने को विवश करते हैं, आगे चलकर वध अथवा बंधन कराते हैं। किन्तु इसमें एक लाभ यह है कि मेरी प्राणहानि न होगी । इस सगुण के कारण अपशकुन के दोष की मात्रा कम हो जाती है ।' यह कहकर प्रियतम आपत्ति से साशंक बन गया और फिर नौका को वेग से प्रवाह में दौडाई ।

नौकाप्रवास

नाचती - कूदती बछेरी की भाँति जलतरंगों पर सरती नौका में झटक से चलते बल्लों से द्रूत वेग से हम आगे बढ रहे थे ।

आगे की ओर देखने पर किनारे के वृक्ष गोल चक्कर खाते दीख पड़ते थे और पीछे की ओर देखते तो वे भाग जाते हों ऐसा आभास होता था ।

प्रवाह अतिशय मंद था इसलिए तट के वृक्ष वायु के अभाव के कारण निष्कंप थे । पंछियों के बोल भी नहीं सुनाई देने के कारण यमुनाने जैसे कि मौनव्रत लिया हो ऐसा लग रहा था ।

उस समय हम भयमुक्त बन गये थे । इसलिए पूर्वभव के परिचय से प्रियतम विश्वस्त हुआ और मेरे साथ हृदय शीतल कर दे ऐसा वार्तालाप करने लगा।

उसने कहा, 'भीरु प्रिये, चिरकाल से बिछुडे हुए हमको इष्ट सुख देनेवाला समागम किसी प्रकार पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुआ है ।

हे सुंदरी, तुम समागम हेतु चित्रपट्ट यदि तैयार न करती तो हम अपने परिवर्तित रूप के कारण एकदूसरे को कभी पहचान न पाते । हे कान्ता, तुमने चित्रपट्ट प्रदर्शित करके मुझ पर जो अनुग्रह किया इससे यह पुनर्जीवन जैसा प्रेमसमागम प्राप्त हुआ ।'

इस प्रकार के श्रवण एवं मन को शांतिदायक अनेक मधुर वचन प्रियतम ने मुझसे कहे परंतु मैं प्रत्युत्तर में कुछ भी न बोल सकी । चिरकाल के परिचित प्रसंगों के कारण उसको मैंने जीत लिया था फिर भी मैं अतिशय लज्जावश अपना मुख उससे फेरकर नीची दृष्टि करके कटाक्षपूर्वक उसे देख रही थी । वाणी मेरे कंठ में ही भटक जाती थी । रतिसुख की उत्सुकता के कारण मेरे हृदय की धुकधुकी बढ गई थी । मेरे मनोरथ पूर्ण होने का यह आरंभ हो रहा था इसके कारण कामदेवने मुझे उत्तेजित कर डाली थी ।

तरंगवती की आशंका

देहाकृति से प्रसन्न एवं पुलकित अंगोंवाली बनी हुई मैं नाव का तल पाँव से कुरेदने लगी और प्रियतम से कहने लगी, 'हे नाथ, इस समय मैं जैसे किसी देवता को कर रही हूँ वैसे तुमको निवेदन कर रही हूँ । मैं अब तुम्हारे सुख-दुःख की सहभागिनी भार्या हूँ । तुम्हारे कारण मैंने पीहर त्याग दिया । मेरा त्याग तुम तो न करना । तुम्हीं मेरे भर्तार और बांधव दोनों हो इसलिए मेरा त्याग न करना ।

हे प्रिय, मैं तुम पर प्रेमरक्त हूँ । इसलिए मुझे केवल तुम्हारे वचन सुनने को मिलेंगे तो भी निराहार रहकर दीर्घ काल तक मैं अपनी देह टिका सकूँगी । परन्तु तुम्हारे बिना हृदय को सुखकर ऐसी तुम्हारी वाणी से वंचित बनने पर एक क्षण भी धैर्य धारण नहीं कर सकूँगी ।'

हे गृहस्वामिनी, इस प्रकार भावी सुख पर मन से विचार किया । मैंने उसे इसलिए यह कहा कि मनुष्य का मन चंचल है ऐसी आशंका मेरे चित्त में प्रगट हुई थी ।

आशंका का निवारण

तब वह बोला, 'प्रिये, तुम अपने पियर के लिए तनिक भी चिंता व

उत्कंठा अब मत करो। हे विशालनयनी, मैं तुम्हारा लेशमात्र भी अहित न करूँगा।

तुम देखो, यह शरदऋतु है, नदीप्रवाह वेगीला है, नाव चपल गति से मंद हुए बिना सरक रही है, अनुकूल हवा से धकियाती तेजी से आगे बढ रही है।

इसलिए हे नयनविशाला सुंदरी, अल्प समय में ही हम श्वेत प्रासादों से सुहावनी, समृद्ध एवं प्रशस्य काकंदीनगरी पहुंच जायेंगे। वहाँ मेरी फूफी रहती है। उसके श्रेष्ठ महालय में तुम निश्चिंत होकर स्वर्ग की अप्सरा की भाँति रमण करना। तुम्हीं मेरे सुख की खान हो, दुःखनाशिनी हो, मेरे गृहपरिवार की गृहिणी भी तुम्हीं हो।' इस प्रकार प्रियतम ने मुझसे कहा।

गांधर्वविवाह

तब उसे चक्रवाक भव के प्रणय का स्मरण हो आया इसलिए कामक्षुब्ध होकर उसने मुझको अपने भुजपिंजर में जकड लिया। प्रियतम के स्पर्श से जो रसपान मैं कर सकी उससे मुझे ऐसी शान्ति हुई, जैसी ग्रीष्म के आतप से संतप्त धरती को वर्षा पाने पर ठंडक होती है। उसने मुझे गाढ आलिंगन दिया परन्तु मेरे स्तन पुष्ट होने के कारण उसके उर में मेरा उर निरंतर एवं सपूर्ण लीन हो न सका।

हमने गांधर्वविधि से गुप्त ववाह किया, जो मानवीय सुखों का सुधा प्रवाह समान था। हम दोनों ने अपने-अपने इष्टदेवों को प्रणाम किया और यौवनस्वर्ग की प्राप्ति समान उसने मेरा पाणिग्रहण किया। विरही जैसे हम दोनों प्रेमप्यास से अतृप्त, देर तक परस्पर एकदूसरे को निरखते रहे। हे गृहस्वामिनी इस प्रकार हमने परितोष एवं मानवीय रतिसुखों का श्रेय प्राप्त किया। नाव भागीरथी में क्रमशः बढ रही थी। उसमें घुमते चक्रवाक जैसे हम मानवचक्रवाक आनंद से रमण करते रहे।

प्रातःकाल

इतने में चंद्ररूप बिंदिया से शोभित, ज्योत्स्नारूप अत्यंत महीन श्वेत दूकूल धारिणी, तारों का हार पहन रजनीयुवती बिदा हुई।

चार प्रहररूप तरंगों से जिसका शरीर ढकेलाता था, वह चंद्ररूप हंस

गगनसरोवर में तैरता पूर्वतट से पश्चिमतट पहुँचा ।

जागकर प्रातःकाल मुखर हुए हंस, सारस, कारंडव, चक्रवाक, टिट्हरे मानो मंगलपाठ करने लगे थे ।

उस समय अंधकारशत्रु, दिनचर्या का साक्षी गगनआँगन की अगनज्योत एवं जीवलोक का आलोक सूर्य उदित हुआ । चक्रवाक के शब्द से पूर्ण एवं तृप्त मनोरथवाले हम भी भागीरथी के प्रवाह के साथ बहुत दूर आ गये थे ।

उस समय प्रियतम ने मुझसे कहा, 'हे विशाल नितंबिनी, अब मुखप्रक्षालन का समय हो गया है । सूर्योदय के बाद रतिक्रिया करने योग्य समय नहीं माना जाता । हे बाला, दायें किनारे जो शंख के अंश जैसा श्वेत रेतीला प्रदेश है वहाँ हम जाएँ और सुंदरी, वहाँ सुखपूर्वक हम रमण करें ।'

उत्तराण : लुटेरों की टोली की पकड में

तत्पश्चात् प्रियतम ने अवलोकनयंत्र का उपयोग करके देखा, कुशलता से गतिनियंत्रण करके नाव को उसी ओर मोडा और चलाया । रतिव्यायाम से थके हुए हम निर्विघ्न गंगा के श्वेत रेतीले पुलिन पर निःशंक होकर उत्तरे ।

वहाँ के रमणीय एवं प्रशस्त स्थलों की ओर अंगुल्यादेश परस्पर करते, भय से नितांत अनजान होने से विश्वस्त ऐसे हमने एकाएक चोरों को देखा । गंगातट की झाडी में से धँस आये, सिर पर कटके बाँधे हुए यमदूत जैसे क्रोधी, कठोर एवं कालेकलूटे चोरों ने हमें घेर लिया ।

मैं प्रियतम को लिपट पड़ी । मारे डर, उच्च एवं फटी आवाज से रोकर मैंने कहा, 'प्रियतम, यकायक टूट पड़ी इस आपत्ति में, बताओ अब क्या करेंगे ?'

तब प्रियतम ने कहा, 'सुन्दरी, डरो मत, धैर्य धरो । इन दारुण चोरों पर प्रहार कर मैं उन्हें रोकता हूँ । तुम मुझे प्राप्त हुई इसके संतोष से मेरा मन मोहित हो गया और हथियार मैंने साथ न लिये । केवल रमण एवं भ्रमण करना होगा इतना ही सोचकर मैंने मात्र तुम्हारे लिए मणि, रत्न एवं आभूषण ही साथ लिये ।

सुंदरी, कामबाण से संतप्त, साहसबुद्धि पुरुष जब मौत से भेंटने का निश्चय करता है, तब आगत संकट की परवा नहीं करता । भले ही ये चोर सब समर्थ हों किन्तु यह विश्वास करो कि शक्तिशाली पुरुष के लिए भयंकर शत्रु को भी

युद्ध में परास्त करना आसान है ।

हे विलासिनी, सत्य परिस्थिति से अनजान ये चोर केवल तब तक मेरे सामने खडे हैं, जब तक उन्होंने खडग उद्धृत मेरी कराल भुजा को देखा नहीं है। इनमेंसे किसी एक को मारकर उसका हथियार ले लूँगा और जैसे पवन बादलों को बिखेर देता है वैसे मैं इन सबको भगा दूँगा ।

पौरुष दिखाते वक्त मुझ पर विपत्ति आये तो भले ही आये, किन्तु हे कृशोदरी, रुदन करती तुमको वे उठा ले जाते मैं कदापि नहीं देख सकता । हे सुन्दरी, निष्ठुर एवं बलवान चोरों से लुट जाने पर वस्त्राभूषण विहीन, विपण्ण शोकग्रस्त और भग्नहृदया तुमको मैं किसी भी प्रकार नहीं देख सकता ।

तुमने पूर्वभव में मेरे लिए मृत्यु का वरण किया और इस भव में पीहर एवं सुखसमृद्धि त्यागे- ऐसी तुम पर चोरों द्वारा बलात्कार होता मेरे जीवित होते हुए रोकूँ नहीं यह कैसे हो सकता है ? तो हे बाला, मैं चोरों का सामना करने लगता हूँ यह तुम देखो । इन चोरों के साथ लडकर या तो हमारा छुटकारा या तो मरण होगा ।

सामना न करने को तरंगवती की प्रार्थना

प्रियतम के ये वचन सुनकर मैं 'हे नाथ, 'तुम मुझे अनाथ न छोड जाना' यह कहती उसके पैरों में गिरी । 'यदि यही निश्चय तुम्हारा है तो मैं जबतक आत्महत्या करूँ तब तक तुम रुक जाओ । चोरों के हाथों तुम्हारा वध होता मैं किसी प्रकार देख सकूँगी नहीं ।

यदि मेरी देह नष्ट हो जायेगी तो इससे मुझे बहुत लाभ होगा, किन्तु यदि चोरलोग तुम्हारी हत्या करेंगे तो फिर जीती रहने में मुझे कुछ भी लाभ नहीं । आह के बाद मुग्धपुरुष, दीर्घकाल प्राप्त, भागीरथी का पथिक, अल्पकाल के मिलन के अंत में, हे नाथ, जैसे स्वप्न में देखा और अदृश्य हुआ वैसे तुम अब अलभ्य हो जाओगे।

परलोक में हमारा फिर से समागम कदाचित् हो या न हो किन्तु जबतक मैं जीवित हूँ तब तक तुम मेरा रक्षण अवश्य ही करना । एकदूसरे को न छोडने पर हमारा जो होना होगा वह भले हो; भाग जानेवाला भी कर्मविपाक के प्रहारों से बच नहीं पाता ।

इस प्रकार अत्यंत विलाप करती और प्रियतम को संघर्ष में उतरने से रोकती मैं माथे पर हाथ जोडकर चोरों से कहने लगी, 'तुम्हारी इच्छानुसार मेरे शरीर पर से सभी मूल्यवान आभूषण ले लो परन्तु मेरी इतनी बिनती है कि इस निर्दोष की हत्या न करो ।

लुटेरों के बंदी बने

इतने में जैसे पंख काटकर जिनका आकाशगमन का अंत किया हो ऐसे पक्षियों के समान दुखियारे एवं भागने में अशक्त हमको चोरों ने पकड लिया ।

अन्य कुछ चोरों ने प्रथम नाव पर और उसमें रखे आभूषण के डिब्बे पर कब्जा किया और चिल्ला-चिल्लाकर रोती मुझे अन्य कुछ चोरों ने धक्का देकर पटक दिया ।

मेरी प्रार्थना के अनुसार सामना न करते मेरे प्रियतम को अन्य कुछ चारों ने ऐसे पकड लिया - मानो मंत्रबल का प्रितकार करने में अशक्त विषैला नाग को पकड़ा ।

इस प्रकार, हे गृहस्वामिनी, हम दोनों को भागीरथी के पुलिन पर चोरों ने पकड़ा और रत्नों का डिब्बा भी ले लिया । हे गृहस्वामिनी, हाथ में कंकण के सिवा सभी मेरे गहने उन्होंने उतार लिये ।

मेरा प्रियतम मुझे, फूल चुन ली गई लता जैसी शोभाहीन बनी देखकर, टपटप आँसू गिराता मूक रुदन करने लगा । लुट गये भंडार एवं कमलशून्य सरोवर समान श्रीहीन मेरे प्रियतम को देखकर मैं भी दुःखी होकर रो पड़ी ।

ऊँची आवाज से चिल्ला-चिल्लाकर रोती मुझे देखकर निष्ठुर चोरों ने डाँटकर कहा, 'दासी, शोर-शराबा मत कर वरन् इस छोकरे को मार डालेंगे ।'

यह सुनकर प्रियतम के प्राणों की रक्षा के लिए मैं उससे लिपट गई और हिचकियाँ ले लेकर काँपते हृदय मूक रुदन करने लगी । आँसू के कारण मेरे अधरोष्ठ चिकना हो गया । नयनरूप मेघों से मैं अपने पयोधररूप डुंगरों को नहलाती रही ।

हे गृहस्वामिनी, चोरटोली का सरदार, उसके सामने लाकर रखे आभरणडिब्बे, को देखकर खुश खुश हो गया और अपने सुभटों से कहने लगा, 'एक पूरा महल

लूटने पर भी इतना माल न मिलता। आराम से बहुतसे दिन जुआ खेलेंगे और मनचहेतियाँ के चाव पूरा करेंगे।

इस प्रकार विचारविमर्श करके वे चोर नदीतट त्यागकर एम दोनों पर पहरा देते हुए, दक्षिण की ओर ले चले।

चोरपल्ली

विकसित सूयबेल से हम दोनों को बाँध लिये और हलाहल विष से भी अधिक हतक ऐसी चोरों के लिए सुखदायक पल्ली में हमें ले गये।

वह पल्ली पहाड की खोह में बनी हुई थी, रमणीय एवं दुर्गम थी। उसके आसपास का प्रदेश निर्जल था किन्तु उसमें जलभंडार थे और शत्रुसेना के लिए वह अगम्य थी।

उसके द्वारप्रदेश में से अनेक लोगों का आना-जाना निरंतर हुआ करता था। साथ साथ वहाँ तलवार, शक्ति, ढाल, बाण, कनक, भाला वगैरह विविध आयुधों से सज्ज चोर पहरा दे रहे थे।

वहाँ मल्लघटी, पटह, डुंडुक्क, मकुंद, शंख एवं पिरिली के नाद गूँज रहे थे। ऊँची आवाज से हो रहे गानतान, हँसीमजाक, चीख-पुकार का चहुँओर कोलाहल था।

उसमें प्रवेश करते समय हमने प्राणियों के बलिदान से तुष्ट होनेवाली देवी का स्थानक देखा। देवस्थान तक जाने के लिए सीढियाँ बनी हुई थीं और उस पर अनेक ध्वजापताकाएँ फहर रही थीं।

कात्यायनी देवी के स्थानक को नमस्कार कर प्रदक्षिणा करके हमने वहाँ उपस्थित एवं बाहर से वापस लौटे चारों को देखा।

वहाँ नियुक्त चोरों ने अक्षत शरीर एवं लाभ सहित लौटे हमारे साथ के चोरों से पूछताछ की और लताबंधन से बंधे हम दोनों को पल्ली में लाये गये देखकर वे विस्मित हृदय एवं अनिमेष आँखों से देखने लगे।

इनमें से कुछ कहने लगे, 'नरनारी के साररूप यह युगल सुन्दर लगता है। तनिक भी मानसिक थकान, बिना अनुभव किये इन्हें विधाता ने बनाये हों ऐसा लगता है। चंद्र से रात ज्यों सुन्दर लगती है, और रात्रि से शरच्चंद्र सुहावना

लगता है वैसे ये तरुण-तरुणी एकदूसरे की शोभा बढा रहे हैं ।'

उस पल्ली में एक ओर लोग आनंद-प्रमोद कर रहे थे तो दूसरी ओर बंधन से बाँधे बंदियों का करुण क्रंदन सुनाई पड़ता था । अतः वहाँ देवलोक एवं यमलोक उभय के दर्शन हो रहे थे ।

पल्लीवासियों के विविध प्रतिभाव

अनन्य रूप, लावण्य एवं यौवन से युक्त देवतायुगल जैसा तरुण-तरुणी का युगल सुभट पकड लाये हैं, यह सुनकर कौतुक से बालक, बूढे एवं स्त्रियाँ सहित लोकसमुदाय पल्ली मार्ग में उमडने लगा ।

इस प्रकार करुण दशा में हमको ले जा रहे देखकर स्त्रियाँ शोकान्वित होकर एवं बंदिनियाँ अपनी संतान जैसे हमें मानकर रुदन करने लगीं ।

एक स्थान पर तरुणों के मन एवं चक्षु चुरा लेनेवाली चोरतरुणियाँ मेरे प्रियतम को देखकर हास्यपुलकित हो यह कहने लगी : 'आकाश में से रोहिणी सहित नीचे उतरे चंद्र जैसे इस युवान बंदी को उसकी पत्नी के साथ-साथ ही रखना ।'

मेरे प्रियतम के रूप में लुब्ध श्वेतनयनी चोरस्त्रियों के प्राण केवल उनकी आँखों में एकत्रित हो गये ।

तरुणियाँ विलासपूर्ण अंगविक्षेप के रूप में कामविकार प्रदर्शित करती हुई कटाक्ष करती हुई वहाँ से गुजरते हुए प्रियतम को प्यार से देख रही थी ।

उनको कामविकार के कारण हँसती-मुस्काती देख उस समय मेरे चित्त में शोक एवं ईर्ष्यायुक्त क्रोधाग्नि भभक उठी ।

बंदी बनाये गये मेरे प्रियतम को मेरे साथ वहाँ प्रविष्ट होता देखकर कुछ बंदिनियाँ उसको पुत्र के समान मानकर शोक करती हुई रुदन करने लगीं । 'देव समान सुन्दर एवं नयनामृत समान तुम हमारे हृदयचोर हो । तुम्हें मुक्त करे ।' इस प्रकार मेरे प्रियतम को संबोधित करती कुछ बंदिनियाँ कहने लगी ।

और अन्य कुछ बंदिनियाँ रोती-चिल्लाती प्रार्थनापूर्वक दुआ के साथ कहने लगी, 'हे पुत्र, तुम अपनी पत्नी के साथ बंधन मुक्त बनो ।'

साथ ही मुझे देखकर वहाँ कुछ छैले युवक आनंद से किलकारियाँ भरते कहने लगे, 'इस युवती के क्या ही कमाल के रूपरंग एवं रसपूर्ण लावण्य हैं !'

तो कुछ मुझे सराहते हुए एकदूसरे को दिखाते थे, 'बच्चे ! इस अप्सरा तुल्य गोरी को तो देखो ! पुष्पगुच्छ समान स्तनयुगल एवं पल्लव समान हाथवाली, अपने प्रियतमरूप मधुकर से सेवित इस स्त्री के रूप में अशोकलता को देखो !

स्तनयुगलरूप चक्रवाक, कटिमेखलारूप हंसश्रेणी, नयनरूप मत्स्ययुगल एवं विस्तीर्ण कटिरूप पुलिनवाली अहा इस युवतीरूप नदी को तो ! देखो ।

अतिशय रुदन करने के कारण लाल अंगारे-सा हो चुका उसका सहज सुन्दर बदन, संध्या की रक्तिम आभा से रंजित शरदपूर्णिमा के चंद्र जैसा कितना सुंदर लग रहा है !

सभी अवस्थांतरों में सुन्दर एवं श्रीयुत उसके रूप के कारण वह कमल रहित हाथवाली भगवती लक्ष्मी समान सुन्दर लग रही है ।

उसके केश मसृण हैं, नेत्र श्यामल हैं, दंतपंक्ति श्वेत एवं निर्मल है, स्तन गोलमटोल हैं, जघन पुष्ट हैं एवं चरण सप्रमाण हैं ।

कुछ चोर कहने लगे थे, 'हम इसे देख धन्य हो गये : कदाचित् सिंगार सजने की तैयारी के समय देवांगना रंभा ऐसी ही लगती होगी ।

यदि यह रमणी स्तंभ को स्पर्श करे तो उसे भी चलित कर दे, ऋषियों को चित्त भी चंचल कर दे; इन्द्र भी अपनी एक हजार आँखों से देखता रहे तो भी तृप्त न होगा ।

तो कुछ चोर परायी स्त्री के प्रति आँख उठाकर देखने में पापभीरू, विनयपूर्वक शरीर सिकुडकर चले जाते थे । वे 'यह बेचारी दीन है, अपने पति के साथ ।'ऐसे भाव से मुझे देखकर दूर सरक जाते थे ।

'इस तरुण का वध करके हमारा सेनापति इस असाधारण रूपवती युवती को अपनी गृहिणी बनाएगा ।'- इस प्रकार वहाँ पकड के लाये गये अन्य स्त्री-पुरुष कह रहे थे कि मेरे प्रियतम का वध करेगा । ऐसे संकेत से मैं अत्यंत भयभीत बन जाती थी ।

तरुण मेरी प्रशंसा करते थे और अधिकतर युवतियाँ मेरे प्रियतम की प्रशंसा कर रही थीं, जबकि बाकी लोग दोनों के प्रति अनुरागपूर्ण अथवा तटस्थ थे ।

चोरसेनापति

इस प्रकार शत्रु, मित्र एवं तटस्थ पल्लीजनों से निरखाते-निरखाते हमें ऊँची कंटकयुक्त बाडवाले चोरसेनापति के घर में ले जाया गया । वहाँ हमको प्रवेश करवा के उस चोरवसाहत के सेनापति के अड्डे समान अति ऊँचे बैठकखंड में ले जाये गये । हे गृहस्वामिनी, वहाँ हमने चोरसमूह के नेता एवं सुभटचूडामणि उस शूरवीर को कोंपलों के ढेर से बने आसन पर बैठा देखा ।

तप्त सुवर्ण की चमकवाली और आसपास गुंजारित भ्रमरोंवाली पुष्पित असनवृक्ष की डाली से उसे धीरे-धीरे हवा झली जा रही थी ।

वीर सोनिकों के परिचयचिह्न समान और सीने पर संग्रामों में प्राप्त अंगलेप समान झेले प्रशस्त प्रहारों से उसका पूरा शरीर चिह्नचित्रित था । अनेक युद्ध लडकर पके बने कालपुरुषों जैसे चोरसुभटों के समूह से घीरा हुआ यमराज समान लगता था । वह घुग्घू जैसी आंखों, पट्टी से लपेटी पिंडलियों, कठोर जाँघ एवं पुष्ट कमरवाला था ।

मृत्यु-भय से त्रस्त एवं काँपते हमने उस समय उसे करसंपुट की अंजलिरूप भेंट प्रदान करते हुए उसका अभिवादन किया ।

दृष्टि केन्द्रित कर के वह हममें भय प्रेरता हुआ अनिमेष नेत्रों से जिस प्रकार बाघ हरिणयुगल को देखता है वैसे हमको निरखने लगा ।

वहाँ स्थित चोरसमूह ने भी हमारे रूप, लावण्य एवं यौवन को अपनी स्वाभाविक रौद्र दृष्टि से देखा और विस्मित हुआ ।

अनेक गायों, स्त्रियों एवं ब्राह्मणों का वध करके पापमय बनी बुद्धि से जिसका हृदय दयाहीन एवं क्रूर हो चुका था ऐसे भीषण सेनापति ने हमारा निरीक्षण कर लेने के बाद निकट खडे एक चोर के कान में निष्कंप स्वर में कुछ संदेश कहा : 'चातुर्मास के अंत में सेनापतियों द्वारा स्त्रीपुरुष की जोडी का बलि चढाकर देवी का यज्ञ करने की हमारी प्रथा है । हमें नवमी के दिन यज्ञ

में इस युगल का वध करना है । इसलिए ये पलायन न हो जायें इस प्रकार तुम उनकी सावधानी से निगरानी रखना ।'

यह सुनकर तुरंत ही मेरा हृदय मृत्युभय एवं उत्तरोत्तर बढ़ते शोक मिश्रिण से भर गया ।

पद्मदेव बंधन में

तत्पश्चात् अपने स्वामी की आज्ञा हाथ जोडकर स्वीकार करके वह चोरयुवक हमको अपने निवासस्थान पर ले गया । हम बेगुनाह के शत्रु बने उसने मेरे प्रियतम के हाथ को जोर से मोडकर उसके सभी अंग बाँध लिये ।

प्रियजन की इस आपत्ति को देख मेरा हृदय भभक उठा । उस दुःख से मैं इस प्रकार विलाप करती हुई भूमि पर गिरी जैसे नागयुवान गरुड से ग्रसने पर नागयुवती गिरती है । बिखरे केशकलाप एवं आँसू की बाढ से अवरुद्ध नयनों सहित मैं उसके बांधने में बाधा डालती हुई प्रियतम के सीने से लिपट पड़ी ।

'अनार्य, तुम उसके बदले मुझे बांधो । जैसे मुख्य हस्तिनी के कारण पुरुषहस्ती बंधन में पड़ता है वैसे मेरे कारण ही बंधन में यह पड़ा है ।'

आलिंगन देने में समर्थ, प्रियतम की सुन्दर, घुटनों तक लंबी भुजाएँ एकदूसरी से सटाकर उसकी पीठ के पीछे बाँध दीं ।

प्रियतम के बंधन खोलने का प्रयास करती देखकर उस चोर ने मुझे लात लगाई एवं धमकाकर एक ओर उठा फेंकी ।

बंधन की स्थिति में मेरा प्रियतम जो धैर्य से विषादमुक्त रहा था, वह अब मुझ पर प्रहार एवं मेरा अपमान होने से अत्यंत दुःखी हुआ ।

रोता हुआ वह मुझसे कहने लगा, 'आह प्रिये ! मेरे कारण तुमको पहले कभी न सहे ऐसे मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक अपमान सहना पड़ा । मैंने अपने मातापिता, बंधुवर्ग के लिए या स्वयं के लिए इतना शोक नहीं किया, जितना नववधू की स्थिति में तुम्हारी दुर्दशा देख मुझे हो रहा है ।'इस प्रकार शोक व्यक्त करते प्रियतम को उस चोरने जैसे किसी गजराज को खूँटे से बाँध दे उसी प्रकार पीठ की तरफ बाँध दिया ।

इस प्रकार बंधन से उसे वश करके वह निर्दय चोर बरामदे में गया और

उसने भूना माँस खाया एवं सुरापान किया ।

मृत्यु के भय से त्रस्त, अत्यंत भयभीत हुई मैं प्रियतम से कहने लगी, 'आह कान्त ! इस भयंकर पल्ली में हमें मरना पड़ेगा ।'

द्रव्य लेकर बंधनमुक्त करने का निष्फल प्रस्ताव : तरंगवती का विलाप

मैंने उस चोर से कहा, 'कौशाम्बी नगरी के सार्थवाह का यह इकलौता पुत्र है और मैं वहाँ के श्रेष्ठी की पुत्री हूँ । तुमको जितने मणि, मुक्ता, स्वर्ण या प्रवाल की इच्छा हो उतने हम तुम्हें यहाँ रहे रहे दिलवा देंगे । तुम्हारे किसी आदमी को हमारा लिखा पत्र लेकर हम दोनों के घर भेजो और तुम्हें द्रव्य मिल जाने के बाद इसके बाद हम दोनों को छोड दो ।'

उत्तर में उस चोर ने कहा, 'हमारे सेनापति ने तुम दोनों को कात्यायनी के यज्ञ के लिए बलिपशु निश्चित किये हैं । उसे देने को कह यदि हम न दें तो वह भगवती हम पर रूठेगी, उसकी कृपा से तो हमारी सब कामनाएँ पूरी होती हैं । कात्यायनी की कृपा से हमारे काम में सिद्धि, युद्ध में विजय और सब प्रकार से सुख-चैन पायेंगे, इसलिए हम तुम्हें छोडेंगे नहीं ।' '

यह सुनकर एवं प्रियतम के गरदन एवं हाथ पीठ की ओर मोडकर बंधे और शरीर को मरोडा देख मैं अधिक जोर से रुदन करने लगी ।

हे गृहस्वामिनी, प्रियतम के गुण एवं प्रेमानुराग स्वरूप बेडी से बंधी मैं वहाँ अति करुण क्रंदन से विवर्ण होकर खेद से भर गई ।

हमें देखनेवालों के चित्त व्यथित एवं उतप्त कर दे ऐसा कराहकर मैं रुदन करने लगी । इससे बंदिनियों के भी आँसू उमड आये । मेरे कपोल, अधरोष्ठ एवं स्तनपृष्ठ भीग गए । मैं प्रियतम को छोड देने के लिए रो-रोकर लगातार बिनती करने लगी ।

हे गृहस्वामिनी, मैं कूटती-पीटती, बाल नोचती उबडखाबड जमीन पर लोटने लगी । 'जैसे सपने में देख सकी हो वैसे तुमसा गुणाढ्य मुझे प्राप्त हुआ । इसके फलस्वररूप मुझ पर यह परंतु भाग्य में रुदन आ पड़ा ।'हे गृहिणी, प्रियतम से होनेवाले बिछोह के दुःसह शोक-संताप के ऐसे करुण वचनों से मैं विलाप करने लगी ।

अचानक प्रोत्साहक गीत सुनाई देना

उस समय वहाँ शराबखाने में बैठे कुछ सुभटों ने कर्णप्रिय सुमधुर गीतवादन के साथ इस प्रकार गाया :

आपत्ति आ पड़ने पर उसकी अवगणना करके जो पुरुष साहसकर्म का आरंभ कर देता है वह या तो बुरे दिन देखता है अथवा सिद्धि पाता है ।

प्रवृत्ति का प्रारंभ करनेवाला पुरुष या तो लक्ष्मी प्राप्त करता है अथवा तो मरण । परंतु जो प्रवृत्ति से किनारा करता है उसकी तो मौत अवश्य आएगी और लक्ष्मी के दर्शन भी दुर्लभ होंगे ।

मृत्यु सबकी निश्चित होती है । इसलिए प्रिय हो उसे करने में देर न करो। अपने मनोरथ पूरे होने से सन्तुष्ट हुए मनुष्य की मौत सफल समझी जाती है ।

बेशुमार संकटों से ग्रस्त पुरुष को भी रंज करना नहीं चाहिए । अरे ! छोडकर चली गई लक्ष्मी भी अल्प समय में फिर से लौट आती है ।

जो विषम परिस्थिति में फँसा हो और पुरुषार्थ असका नष्ट हो गया हो, ऐसे पुरुष, को जो दुःख झेलने पड़ते हैं वे सब प्रियतमा के संग में सुख रूप हो जाते हैं ।

अमिट कर्मविपाक

हे गृहस्वामिनी, वह गाना सुनकर मेरा प्रियतम उसके भावार्थ से प्रेरित होकर मुझसे कहने लगा, 'हे वरनितंबिनी प्रिया, तुम मेरे इन वचनों पर सोचो विचारो, हे श्याम-मसृण-प्रलंबकेशकलापिनी प्रिया, निगूढ रहस्यमय पूर्वकृत कर्मों के फल से छुटकारा असंभव है ।

कोई भागकर कहीं भी जाये यमराज की पकड में आ ही जाता है । उनके प्रहारों से बचने का प्रयास करनेवाला कोई भी मनुष्य कर्मफल अर्थात् प्रारब्ध निवार नहीं सकता ।

यदि ग्रहनक्षत्र के स्वामी अमृतगर्भ चंद्र पर भी आपत्ति आती है तो फिर मामूली मनुष्य के लिए शोक क्यों करें ?

क्षेत्र, द्रव्य, गुण एवं काल के अनुसार स्वकर्मफल सुखदुःख के रूप

में प्राप्त होते है, उसमें अन्य कोई तो केवल निमित्त बनता है ।

इसलिए हे सुन्दरी, तुम विषाद न करो । इस जीवलोक में सुख-दुःख की प्राप्ति करानेवाले विधि के विधान का किसी से भी उल्लंघन नहीं हो सकता।'

हे गृहस्वामिनी, इस प्रकार मैं उस बुरी परिस्थिति में प्रियतम के समझदारी के वचनों का मर्म ग्रहण करके आश्वस्त हुई तब मेरा शोक सहनीय हुआ ।

सहृदय बंदिनियों को संकटकथा सुनाना

मेरा रुदन सुनकर एकत्र हुई बंदिनियाँ मुझे पति के साथ बंधनग्रस्त एवं भोली हिरनी-सी मेरी दशा देखकर अत्यंत उद्विग्न हुई ।

मेरे करुण विलाप ने उनकी आँखों में आँसू उमडा दिये । उन्हें अपने-अपने स्वजनों का स्मरण हो आया और इसलिए लम्बे समय तक रोती रहीं ।

उनमें जो स्वभावगत वात्सल्यमय सुकुमार हृदया थीं वे हम पर टूटे संकट-विपदा को देख अनुकंपा से भरकर काँपती हुई हिचकियाँ ले ले रोने लगीं ।

नेत्रों में आँसू भरकर वे पूछने लगीं, 'तुम कहाँ, किस प्रकार इन अनर्थकारी चोरों के हाथ में पड़े ?

हे गृहस्वामिनी, तब मैंने हमारे चक्रवाक भव के सुखोपभोग, हाथी का स्नान, व्याध द्वारा चक्रवाक वध और वहीं मुझसे अनुमरण का स्वीकार, मनुष्यभव प्राप्त कर वत्सनगरी में कहाँ मेरा जन्म हुआ, कैसे चित्र द्वारा हम परस्पर पहेचान गये, मेरी मँगनी और उसका इन्कार कैसे हुआ, मैंने अपनी चेटी को कैसे उसके घर भेजा, नौका में हम कैसे भाग निकले और भागीरथीतट पर चोरों ने हमको कैसे पकडा - यह सारा वृत्तांत रोते-रोते मैंने बंदिनियों को सुनाया ।

अनुकंपा से प्रेरित चोर का छुडाने का वचन

मेरी यह कहानी सुनकर वह चोर बगमदे से बाहर आया और अनुकंपा से द्रवित वह मेरा प्रियतम के बंधन ठीक तरह सांस ले सके उतने ढीले करने लगा।

इसके पश्चात् उसने उन बंदिनियों को दुत्कारकर फटकारा । इससे मेघगर्जना से भयभीत हरिणियों की भाँति वहाँ से वे पलायन कर गईं ।

उनके जाने के बाद चोर ने धीमे स्वर में मेरे प्रियतम से कहा, 'तुम डरो

नहीं, मैं तुम्हें मृत्यु से बचाऊँगा। मेरी संपूर्ण शक्ति लगाकर, सभी उपाय आजमाकर, मेरे प्राणों की बाजी लगाकर भी मैं तुम्हारे प्राणों की रक्षा करूँगा।'

उसके मुख से निकले ये वचन सुनकर मृत्यु का संत्रास हमारा दूर हुआ और हमें बहुत शांति हुई। हम दोनो का जीवन क्षेमकुशल रखने का भाव धारण कर हमने जिनवरों को वंदन किया, फिर प्रत्याख्यान का पारना किया

इतने में वह चोर पत्तों की पत्तल में मांस ले आया। 'यह तुम्हारे लिए भोजन है, इसे खा लो, हमें बहुत दूर जाना है' उस चोरने कहा। 'यह हमारे काम में नहीं आ सकता'-यह कहकर हमने वह न लिया, किन्तु हमने ऊँची अंजलि कर केवल पानी पिया।

निशा का प्रारंभ

उन क्षणों में पदभ्रष्ट राजा जैसा प्रतापनष्ट सूर्य गगन पार कर गया। दूसरे दिन पुनः उदित होने के लिए वह अस्त हो गया। दिन के अस्त होते ही वृक्षों के पत्ते मुरझाये, पंछी अपने घोंसलों में लौटे और कलरव करने लगे। हे गृहस्वामिनी, मौत के भय से हम काँपते थे और वह अतिशय लम्बा दिन हमारा रोने में ही बीता।

जीवलोक के अवलंबन जैसी तब घुग्घूप्रिय, गगनतल सुहाती घनघोर कालरात्रि उतर आई। थोडी देर बाद वारिधिकावर्धनविकासंक, गतिमान अंबरतिलक और कंदकुसुम जैसा श्वेत चंद्र उदित हुआ।

बंधनमुक्ति एवं चोरपल्ली में से पलायन

चोरपल्ली में हास्य का शोरगुल, पुरजोश बजते ढोल का निनाद, गीत का शब्द और मदमत्त हो कर नाचते चोरों की रंगरली छा गई।

उस समय सब लोग जब भोजन में व्यस्त थे तब उस चोरने मेरे प्रियतम को बंधन से मुक्त किया और कहा, 'तुम डरो नहीं। मैं तुमको भगाने की अब कोशिश करता हूँ।'

इसके बाद किसी को ज्ञात न हो इस प्रकार वह हमको पल्लीपति के घर के विजयद्वार में से होकर ले चला। वह लम्बा था इसलिए निकलने में हमको बहुत समय लगा।

इसके बाद अतिशय वेग से हमें चलना पडा और दर्भतृण एवं सांठें की बनी झोंपडियों में से हम बहुत मुश्किल से गुजरे ।

चोर ने अब आने-जाने से पूर्वपरिचित, जो सुखपूर्वक पार किया जा सके और जिसका अंतर उसे ज्ञात था ऐसा जंगल की सीमा तक का मार्ग पकडा ।

वह आगे-पीछे, आसपास निरीक्षण करता, कभी रुकता, कभी आवाजें सुनता आगे बढने लगा । वह आवरण एवं कसे हुए उपयुक्त बख्तर और हथियार से सज्ज था । थोडी देर में उसने मुख्य मार्ग छोड दिया और हमसे कहा, 'इस रास्ते से वही जिंदा व्यक्ति गुजरता हैं, जो चोरों के जासूसों के हाथ मरना पसंद करता है ।'

उस आडे मार्ग पर हम डरते-सहमते उस चोर के पीछे-पीछे बहुत देर तक चलने के बाद मुख्य मार्ग पर आ गये ।

संकटपूर्ण वन्य मार्ग का प्रवास

हम जब सूखे पत्तों पर से गुजरे तब कुचल जाने के कारण जो आवाज हुई उससे पेंडों पर से पंछी पंख फडफडाकर उड गये ।

वन्य प्राणी भैंसा, तेंदुआ, बाघ, लकडबघ्घा, शेर आदि के चीत्कार, चिंघाड, दहाड एवं क्वचित् पंक्षियों की कंपा देनेवाली चीख ऐसे अनेकविध शब्द हमें सुनाई देते थे ।

ऐसे भारी खतरे के बीच थे फिर भी हमें मार्ग में पशुपंक्षियों के शुभ शकुन हो रहे थे । इससे लगा कि भावि सानुकूल है ।

मार्ग में कहीं-कहीं वन्य हाथियों की सूँड के प्रहारों से टूटे-गिरे फल, कोंपलें एवं डालियाँ बिखरे पड़े दिखाई दिये ।

चोर का अल्विदा : आभार दर्शन

जब इस प्रकार अनेकविध परिस्थितियों से गुजरते जंगल को देखते देखते हमने पार किया तब वह चोर कहने लगा, 'जंगल हमने पार कर लिया है । अब तनिक भी तुम न डरो । यहाँ से नजदीक में ही गाँव हैं । तुम यहां से पश्चिम दिशा की ओर जाओ । मैं भी लौट जाता हूँ । मालिक के हुक्म से पल्ली में मैंने

तुम्हें बाँधा और पीटा उसके लिए मुझे क्षमा कर देना ।'

यह सुनकर मेरे प्रियतम की दृष्टि में उस उपकारी चोर की ओर मित्रभाव भर आया जैसे उसके उपकार के घूँट पी रहा हो । वह गद्गद् एवं मधुर वचन से कहने लगा, 'आप अपने मालिक के आज्ञाकारी हो; परंतु हे वीर, हम जो अत्राण, अशरण, जकडे, निपट निराश होकर बचने की आशा खो चुके थे उन्हें इस प्रकार जीवनदान देकर आपने हम पर असामान्य उपकार किया है ।

मैं हूँ वत्सपूरी के सार्थवाह धनदेव का पुत्र । मेरा नाम पद्मदेव है । आपके कहने से यदि कोई वहाँ आकर मुझे मिलेगा तो मैं उसके साथ आपके लिए पुष्कल धन भेज दूँगा । ऐसा करने का आप मुझे वचन दें तब मैं यहाँ से हटूँगा । और आप शपथ लीजिए कभी किसी कारण यदि आपका वहाँ आना हो तो ऐसा न हो कि आपके दर्शन बिना हम रह जायँ ।

जीवलोक का एकमात्र सार जीवनदान देनेवाले का ऋण चुकाना है, जो इस समग्र जीवलोक में शक्य नहीं । दूसरा यह कि हम लोगों के प्रति आपके आदर एवं प्रेम के कारण हमारे पर अनुग्रह करके आपको स्थान-परिग्रह का संयम पालना पडेगा ।

ऐसा जब कहा गया तब वह कहने लगा, 'मैं सचमुच धन्य एवं अनुगृहीत हुआ हूँ । आप मुझ पर पूर्ण प्रसन्न हैं इसमें ही आपने मेरा सारा कल्याण कर दिया है ।' इतना कहकर 'अब आप जाओ, देर न करो,' कहता हुआ वह उत्तर की ओर घुम गया, और हम भी पश्चिम की ओर चल निकले ।

बस्ती की ओर प्रस्थान

रातभर कष्टप्रद-तिरछे मार्ग पर चले इस कारण पैरों की बिवाइयाँ फटकर वहाँ घाव हो गए । उनमें से रक्त बहने लगा । बहुत कठिनाई से हम आगे बढ रहे थे । बहुत वेग से चलने के कारण भूख-प्यास एवं थकान से मैं चूर हो गई । श्रम एवं डर के मारे गला एवं होंठ सूख गये और मैं लडखडाने लगी । चलने में असमर्थ बन गई हूँ यह देख मेरे प्रियतमने मुझे पीठ पर उठा लेना चाहा । परंतु यह टालने के लिए मैंने बरबस कदम बढ़ाये ।

मेरी देख-भाल करते हुए मेरे प्रियतम ने कहा, 'हम धीमे-धीमे चलें ।

हे मृगाक्षी, तू थोडी देर क्वचित यहाँ वहाँ पडे हुए लकडी वाले वनप्रदेश की ओर दृष्टि डाल । गायों के आने-जाने से जहाँ कुचले तृण एवं गोबर छितरे नजर आते हैं ऐसे इस गोचर प्रदेश पर से अनुमान कर सकते हैं कि कोई गाँव समीप में ही है । तुम डरना छोड दो'

हे गृहस्वामिनी, उस समय लोकमाता जैसी गायें मैंने वहाँ देखीं । इससे मेरा डर तुरंत दूर हुआ और अत्यंत प्रसन्नता हुई ।

क्षायक गाँव पहुँचना

इतने में असनपुष्प के करनफूल पहने, लाठी से खेलते दूध से पुष्ट, चमकीले कपोलवाले गोपबाल दिखाई पड़े । उन्होंने हमसे पूछा, 'तुम इस आडी राह कहाँ से आये ?'

आर्यपुत्र ने तब कहा, 'मित्रो, हम रास्ता भूले-भटके हैं । इस प्रदेश का क्या नाम है ? इसके नगर का नाम क्या है ? यहाँ से गाँव कितना दूर है और उसका नाम क्या है ?

उन्होंने कहा, 'नजदीक के गाँव का नाम क्षायक है । परंतु इससे अधिक हम कुछ नहीं जानते, हम तो यहीं जंगल की सीमा पर पलकर बडे हुए हैं ।

इसके बाद आगे चलने पर हल से जोती भूमि के निकट धीरे-धीरे हम पहुँचे । तब प्रियतम ने मुझे फिर से इस प्रकार कहा, 'हे वरोरु, वन से पत्ते इकट्ठे कर ला रही इन ग्रामीण युवतियों को देखो । अंक में भरे पत्तों के कारण उनकी दृढ, रतनारी पुष्ट जाँघें कैसी निरावरण दीख रही हैं !'

मेरा शोक एवं परिश्रम हलका करने के लिए मेरा प्रियतम ये एवं अन्य चीजें मुझे दिखाकर प्रिय वचन कहता रहता था ।

गाँव का तालाब

इसके बाद थोडे आगे बढे तो हम गाँव के तालाब के पास आ गये । वह स्वच्छ जल से परिपूर्ण था । उसमें मछलियों की बहुतायत थी । चारों ओर कमलों के समूह खिले हुए थे ।

गाँव के उस तालाब में से हमने स्वच्छ, विकसित कमलों की सुगंधपूर्ण पानी निर्भय मन होकर अंजलि भर-भर पीया ।

उत्सुक ग्रामीण तरुणियाँ

उस समय हमने चूडियों से भरा हाथ पानी के घडे के कंठ से सटाकर, कटिप्रदेश पर ठहराकर ढोती युवतियाँ देखीं । मन में आया कि इन घडों ने क्या पुण्य किया होगा कि जिन्हें ये युवतियाँ प्रियतम की तरह कटितट रखकर चूडियों भरे हाथों से आलंगिन देती हैं ? वे भी विस्मय से विस्फारित नेत्रों से बार-बार एवं टकटकी बाँधे (अविरत) बड़ी देर तक हमको देखने लगीं ।

हम दोनों उस गाँव में पहुँच जहाँ पुष्ट तुंबोंसे सुंदर लग रही सरस प्रौढ बाडें ऐसी लगती थीं मानो विपुल स्तनवाली महिलाएँ आंलिगन दे रही हों । हमारे सौन्दर्य से विस्मित ग्रामतरुणियाँ हमें आँखों से अलग न होने देती थीं । वे उतावली होकर जोश में एकदूसरी को ढकेलती थीं । कुछ स्थानों पर देखने लायक हमें देखने की स्पर्धा में उन्होनें बाडों को कुचलकर तोड डाला ।

बाडें तोडने की आवाज सुनकर वृद्ध चिंतित होकर घरों से निकल बाहर रास्ते पर गये । कुछ स्थलों के कुत्ते इकट्ठे हो गये और मुँह उठाकर भोंकने लगे। अतिशय चौडी चूडियों एवं फीके मैले एवं दुबले देहवाली वृद्धाएँ और बीमार स्त्रियाँ भी हमें देखने के लिए बाहर निकल आई थीं ।

हे गृहस्वामिनी, गृहस्थ स्त्रियाँ भी मुलायम ऊँचे प्रकार के वस्त्र की ओढनी ओढकर, कमर पर बच्चे उठाकर, बाहर निकल हमें देख रही थीं ।

इस प्रकार अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ अटकल से समझते, चलते-चलते यह सब देखते हुए हमने वह मार्ग तय किया ।

आहार की तलाश

वन्य पगडंडी पर चलने के कारण मेरे तलवों में छाले पड़ गये थे । जीवित रहने की लालसा में भूख, प्यास एवं थकान की मैं उपेक्षा कर जंगल पार कर गई थी । परंतु अब भयमुक्त हुई एवं बचने का मार्ग खुल जाने पर भी मेरे पैर एवं अन्य अंगों में पीडा, थकान एवं भूख-प्यास को मैं अनुभव करने लगी ।

अतः मैंने प्रियतम से कहा : 'हम अब भूख शान्त हो ऐसे पथ्य एवं निर्दोष आहार की यहीं कहीं तलाश करें ।"

यह सुनकर प्रियतम ने मुझसे कहा, चोरों ने हमारा सर्वस्व छीन लिया

है, इस स्थिति में अपरिचित एवं पराये घर में हम प्रवेश कैसे कर सकते हैं ?

कुलीनता का अधिक अभिमानी संकटग्रस्त स्थित में भी दीनभाव से 'मुझे कुछ दीजिए'कहकर लोगों के पास जाने में अत्यंत कठिनता अनुभव करता है।

हे मानिनी, यह लज्जास्पद, मानखंडक, अपमानजनक, हीन बना देनेवाली याचना मैं कैसे करूँ ?

सज्जन मनुष्य धन गँवाकर असहाय, असंग, अत्यंत कष्टप्रद स्थिति में ग्रस्त हो जाने पर भी याचक बनना नहीं चाहता।

असभ्यता का भय छोड, धृष्ट होकर याचना के लिए 'मुझे दीजिए' ऐसा दीन वचन कहने के लिए उद्युक्त होकर भी मेरी जीभ असमर्थ हो जाती है।

एक अनमोल मानभंग को छोड अन्य कुछ भी ऐसा नहीं जो मैं तुम्हारे लिए न करूँ।

इसलिए हे विलासिनी, तुम इस मुहल्ले के दरवाजे के पास सुन्दर दीख रहे देवालय में कुछ समय विश्राम करो, दरम्यान मैं भोजन का कुछ प्रबन्ध करूँ।

सीतादेवी के मंदिर में आश्रय

हम उस गाँव के सीतादेवी के मंदिर में गये। वह चार स्तंभ एवं चार द्वारवाला था। वह उत्सवदिन मनाने की विधि देखने को एकत्रित होते किसानयुवकों को बातचीत करने का मोका देता था। वहाँ प्रवासी आश्रय पाते और गृहस्थ मिलकर विचारविमर्श करते। ग्रामीण युवकों का वह संकेतस्थान भी था।

लोकविख्यात, यशस्विनी, सबकी आदरणीया, दशरथ की पुत्रवधू एवं राम की पतिव्रता पत्नी सीतादेवी को हम दोनों ने प्रणाम किया। इसके बाद हम दोनों एक ओर स्वच्छ, शुद्ध हरियाली रहित जमीन पर पर्व की समाप्ति होने पर बिखरी पड़ी धान की बालियों के समान बैठ गये।

हमने उस समय सभी अंगों में फुर्तिले, विशुद्ध सैंधव जाति के उत्तम अश्व पर आरूढ एक युवक को हमारी ओर आते देखा। उसने अत्यंत महीन एवं श्वेत क्षोम का कुरता एवं कटिवस्त्र पहना था। उसके आगे-आगे द्रुत गति से चपल सुभट-परिवार दौड रहा था।

उस नागर तरुण को देख लज्जावश मैं मंदिर के एव कोने में एक अष्टकोणीय स्तंभ की आड के सहारे सिकुड़कर खडी रह गई ।

प्रत्यागमन

खोज में निकले स्वजन से मिलन : घर पर घटित घटनाएँ

इसके बाद उस कुल्माषहस्ती नामक युवक ने देवालय की प्रदक्षिणा करते समय आर्यपुत्र को देखा। वह एकदम घोडे से भी अधिक गति से दौडकर आर्यपुत्र के चरणों में गिरा और ऊँची आवाज से रोता हुआ बोला, 'अब तुम्हारे घर में चिरकाल शान्ति हो जाएगी ।'

आर्यपुत्र ने भी उसे पहचान लिया और गाढ आलिंगन देकर उससे पूछा, 'अरे! तुम्हें यहाँ क्यों आना पड़ा ? तुम शीघ्र बताओ। सार्थवाह, माताजी एवं सेवक सब कुशल तो हैं न ?'

वह नजदीक ही जमीन पर बैठ गया। अपने दाहिने हाथ में मेरे प्रियतम के बाँये हाथ की उँगलियाँ पकडकर वह कहने लगा, 'कन्या भाग गई यह जब श्रेष्ठी के घर में प्रभातकाल ज्ञात हुआ तब दासी ने तुम्हारे पूर्वसंबंध को प्रकट किया।

रात को लुक-छिपकर जिस प्रकार तुमने प्रयाण किया इत्यादि दासी ने वह सब उसने जैसा देखा था तुम्हारे स्वजनों को कह सुनाया ।

प्रातःकाल श्रेष्ठी ने सार्थवाह के घर जा कर कहा, 'सार्थवाह, पिछले दिन मैंने तुम्हारा मन कडुआ किया इसके लिए मुझे क्षमा करो। मेरे दामाद की खोज करो। चाहता हूँ कि वह निर्भय हो शीघ्र लौट आए। तुम्हारा पुत्र विदेश में पराये घर रहकर करेगा क्या ?

और श्रेष्ठी ने तुम्हारे पूर्वजन्म का वृत्तांत जिस प्रकार दासी ने बताया था वह सब क्रमशः सार्थवाह को कहा ।

तुम्हारी वत्सल माता तुम्हारे वियोग के शोकावेग से रो-रोकर आसपास के सबको रुलाने लगी ।

बात की बात में तो सार्थवाह के पुत्र एवं श्रेष्ठी की पुत्री दोनों को उनके पूर्वजन्म का स्मरण हुआ है - यह बात कर्णोपकर्ण फैल गई सारी वत्सनगरी में।

श्रेष्ठी एवं सार्थवाह ने इसके बाद तुमको खोजने के लिए सैकडों देश, नगर, खदान इत्यादि स्थानों में चारों ओर अपने आदमी भेजे । मुझे भी पिछले दिन तुम्हें खोजने के लिए प्रणाशक भेजा । आज मैं वहाँ पहुँचा परन्तु तुम्हारे संबंध में कुछ सुराग न मिला ।

मैंने सोचा कि धनमाल से क्षीण हुए, अत्यंत पीडित, पतित, अपराधी एवं कपटविद्या में कुशल लोग सीमावर्ती गाँवों में आश्रयस्थान बनाकर रहते हैं । इसलिए मैं वहाँ गया और पूछताछ कर लेने के बाद तलाशी के लिए यहाँ आया । मुझ पर देवों की कृपा हुई जिसके फलस्वरूप मेरा श्रम सफल हुआ । सार्थवाह एवं श्रेष्ठी दोनोंने स्वयं लिखकर ये पत्र दिये हैं ।' यह कहकर उसने प्रणामपूर्वक वे पत्र धर दिये ।

गुरुजनों का संदेश : भोजनव्यवस्था

आर्यपुत्रने भी प्रणाम करके वे पत्र लिये । उनको खोला उनमें भेजे संदेश एवं आदेश धीरे-धीरे और कोई रहस्यवचन हो इस रीति से उन्हें गुप्त रखने के लिए मन में पढा । उनका अर्थग्रहण कर लेने के बाद आर्यपुत्रने मुझे सुनाने के लिए वे पत्र ऊँची आवाज से पढे ।

दोनों पत्रों में लिखित रोषवचन रहित, प्रसन्नता एवं विश्वास सूचित करनेवाला और शपथ के साथ 'लौट आओ' का संदेश प्रस्तुत करता मैंने सुना । यह सुनकर मेरा शोक तुरंत हवा हो गया और संतोष होने के कारण उद्भूत हास्य से हृदय भर गया । इस बीच कुल्माषहस्ती ने मेरे प्रियतम के अतिशय वेदनायुक्त, विकृत एवं सुजे बाहुओं को देखा जो चोरपल्ली में कसकर बाँधे चुस्त बँधनों के फलस्वरूप था वह बोला :

'सच सच बताना, उत्तम हाथी की सूँड समान और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ ये तुम्हारे बाहु क्योंकर सूजन से विकृत और छेदयुक्त हुए हैं ?'

तब हम दोनों ने जो भारी संकट झेलने पड़े, मौत की जो भयंकर समस्या सामने आई थी और जो कुछ किया, वह सब यथातथ्य उसको कहा । यह सुनलेने के बाद कुल्माषहस्ती ने उस गाँव के आदरणीय ब्राह्मण कुटुम्ब में हमारे लिए भोजनव्यवस्था कराने की तजवीज की और उसके साथ ऊँची जगह पर बसे

ब्राह्मणवाडे में होकर हमने उस ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया ।

वहाँ छतमें लटकाये गये कलश के कंठ से जलबिंदु टपकते थे । पाँव-प्रक्षालन कर हम गौशाला के समीप बैठे । हाथ-मुँह धोने के लिए हमको शुद्ध जल दिया । खाद्यान्न बन गया था । सुपक्व, रसमय, स्निग्ध अन्न से हमें तृप्त किया गया । हे गृहस्वामिनी, वहाँ हमने अमृत-सा अत्यंत रुचिकर आहार प्राप्त किया। इसके बाद हाथ धोये, जूठे बरतन खिसका दिये और पाँवों में पड़े खरोंच पर घी मलकर स्निग्ध किये । अंत में उस कुनबे के लोगों को नमस्कार करके हम वहाँ से चल निकले ।

प्रणाशकनगर में विश्रांति

हम दोनों अतिशय श्रान्त एवं थके-माँदे थे इसलिए घोडे पर सवार हुए। कुल्माषहस्ती और उसका सुभटपरिवार हमें घेरकर पैदल चल रहे थे । इस प्रकार हम उस प्रदेश के आभूषण समान, लक्ष्मी के निवासरूप, समस्त गुणों से युक्त शोकविनाशक प्रणाशक नामक नगर के पास पहुँचे ।

वहाँ गंगा की सहेली जैसी और ऊँचे कगारों के कारण विषमतट एवं जलभरपूर तमसा नदी को हमें नौका में बैठकर पार करना पडा तब हमे प्राणशकनगर में प्रविष्ट हुए । प्रणाशकनगर सुंदर चूडामणि समान हाटबाजारों से समृद्ध है गंगा और तमसा के संगम के तिलकस्थान पर भव्य एवं सुहावना लगता है । जब हम वहाँ पहुँचे तब दिवस एक तिहाई शेष रहा था।

कल्माषहस्ती के भेजे एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त वाहन में हम बैठे और वहाँ नगर के सिवान पर रहते एक मित्र के घर में सुखपूर्वक प्रवेश किया । वहाँ स्नान, भोजन, अंगलेपन आदि अच्छी सुश्रूषा प्राप्त हुई और शांति से निद्रा लेकर सुख से रात गुजारी । सुबह हाथमुँह धोकर देवताओं को प्रणाम किया और श्रम, भय और भूख से मुक्त बने हम फिर से शय्या में आराम करने लगे ।

उस समय अच्छा मुहूर्त देखकर 'कल्माषहस्ती के साथ हम आ रहे हैं' इस प्रकार के संदेश के प्रियतम ने पत्र लिखे और कौशाम्बी हमारे घर भेजे । अभ्यंग, वस्त्राभूषण एवं अन्य शारीरिक सुखसुविधाएँ पाईं और खानपान का आनंद लेते हुए हम वहाँ ठहर गये । हे गृहस्वामिनी, इस प्रकार कुछ दिन वहाँ हमने निवास

किया और थकान मिटाई। पत्र का प्रत्युत्तर मिलने पर हम प्रसन्न हुए और कौशाम्बी जाने को उत्सुक हो गये।

हमारे लिए प्रवासखर्च में आवश्यक सोना और पहनने के लिए विविध वस्त्र लाये गये। उस मित्र के घर की महिलाओं के मना करने के बावजूद मैंने भोजनमूल्य देना उचित समझकर उनके बच्चों के हाथ में एक एक हजार कार्षापण दिये। स्नेह का यह अनुचित प्रत्युत्तर होने के भय से प्रियतम ने कहा, 'उपकार के प्रत्युत्तर रूप यह हम तो बहुत अल्प दे सके हैं' और भावनापूर्वक लज्जित होने लगे।

प्रणाशकनगर से विदाय

सभी स्त्रियों के गले लगकर मैंने उनसे बिदा ली। मित्र के घर के सभी पुरुषों से भी प्रियतम एवं मैंने भाव से आर्द्र होकर अब प्रस्थान की आज्ञा माँगी। अलग होते समय हमने मित्र के घर के लोगों को हमारे स्मरणचिह्नों के रूप में विविध प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों का उपहार प्रदान किया।

हे गृहस्वामिनी मार्ग के संभाव्य भय एवं कष्टों को ध्यान में लेकर वहाँ से अनेक औषध एवं पाथेय को भी साथ में लिया। मेरा प्रियतम उत्तम लक्षणयुक्त, ऊँची नस्ल के वेगी अश्व पर सवार होकर मेरे वाहन के पीछे-पीछे आ रहा था। सार्थवाह एवं श्रेष्ठी ने भेजे कुल्माषहस्ती समेत के काफिले के घेरे से वह रक्षित था। अनेक युद्धों में योगदान देकर पराक्रम से जिन्होंने नाम कमाया है और जिनका प्रताप सुविदित है, ऐसे हथियारधारी वीर हमारे रक्षक थे।

रिद्धि, समृद्धि एवं अनेक गुणों से कई लोगों की चाहना प्राप्त करते अनेक हाट-बाजारों से समृद्ध गलियों से सुशोभित उस प्रणाशक नगर से हमने प्रस्थान किया। आराम एवं हमारी अनुकूलता अनुसार राजमार्ग से गुजरते हमको दूर दूर तक खडे हजारों लोग देख रहे थे। मित्र के घर के सदस्य स्नेहवश हमें बिदा करने आये थे। अन्य के लिए दुर्लभ इस प्रकार मय दबदबे के हम गाँव से बाहर निकले।

आर्यपुत्र की सूचना से सारथि ने वाहन रोका। उसमें प्रियतम भी आ बैठा फिर वाहन आगे बढा। चारों ओर मनोहर महकते ऊँचे ऊँचे धान के खेत

एवं कहीं कहीं कलेउधारिणियाँ हमें दिखाई पड़ते थे । बीच बीच कहीं चबूतरे एवं प्याऊ देखते हुए हम आगे बढ रहे थे ।

वासालिय गाँव में आगमन

बीच के कुछ गाँव टालकर हम धीरे-धीरे वासालिय गाँव पहुँचे । वहाँ एक रमणीय, प्रचंड वटवृक्ष दिखाई पड़ा : विस्तृत शाखाएँ और पर्णघटा से वह सुन्दर लग रहा था मानो मेरुपर्वतशृंग । वह पक्षीसमूह का निवास एवं प्रवासियों के लिए विस्मयकारी था । उसके समीप के रहने वालों ने हमको यह बात बताई :

'कहा जाता है कि निर्ग्रंथ धर्मतीर्थ के उपदेष्टा, शील एवं संवर से सज्ज वर्धमानजिन अपनी छद्मस्थ अवस्था में यहाँ ठहरे थे । वर्षाकाल में महावीर ने यहाँ बसेरा किया था इसलिए यहाँ यह 'वासालिय' नामक गाँव बसा । देव, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, गांधर्व एवं विद्याधरोंने जिसको वंदन किये हैं ऐसा यह वटवृक्ष भी जिनवर की भक्ति के कारण पूजनीय हुआ है ।'

उनकी यह बात सुनकर हम दोनों वाहन से उतरे । हमने अत्यंत सहर्ष एवं उत्सुक नेत्रों से रोमांचित होकर उस वटवृक्ष को प्रत्यक्ष जिनवर माना और श्रेष्ठ भक्तिभाव से मस्तक नवाकर उसके मूल के समीप जाकर दंडवत प्रणाम किया ।

हाथ जोड़कर मैं बोली, 'हे तरुवर, तुम धन्य हो, कृतार्थ हो कि तुम्हारी छाया में महावीरजिन रहे थे ।' हमने वट की पूजा की, तीन प्रदक्षिणाएँ की और पुष्टि एवं तुष्टि धारण करके हम वाहन में बैठे । वर्धमानजिन की इस निसीहिया (अल्पावधि वासस्थान) के दर्शन एवं वंदन करने पर मुझमें हर्ष एवं संवेग ऐसे जागे कि मैं अपने को कृतार्थ मानने लगी ।

उस समय मेरे प्रियतम के संग मानो पीहर के सुखचैन लूटने का मुझे अनुभव हुआ । इस प्रकार हम आनंदित होते हुए आगे बढे और एकाकीहस्तिग्राम एवं कालीग्राम से गुजर कर शाखांजनी नगरी में प्रवेश किया ।

उसकी आबादी घनी थी । भवन बादलों का मार्ग रोके ऐसे उँचे थे । वहाँ भी हमने सिवान में रहते एक मित्र के घर ठहरे । वह घर कैलास के शिखर जैसा ऊँचा था मानो नगरी का मानदंड हो । वहाँ स्नान, भोजन, उत्तम शय्या आदि सुविधाओं से हमारा आदर-सत्कार किया गया । हमारे साथ के सब लोगों को

जिमाया और वाहन के बैलों की अच्छी देख-भाल की गई। वहाँ सुख से रात्रि-निवास करने के बाद अगले दिन सूर्योदय होते ही हमने हाथपैर एवं मुँह धो लिए और घर के लोगों से बिदा लेकर हम आगे बढे।

भाँति भाँति के पक्षीगण का कलरव एवं भ्रमरवृंद की गुंजार सुनाई पड़ते थे। बड़ों एवं बुजुर्गों के संबंध में बातें हो रही थीं जिनमें हम उतने लीन हुए कि पता भी न चला कि पंथ कैसे कट गया।

कुल्माषहस्ती हमको गाँव, नगर, कीर्तिस्मारक, चैत्यवृक्ष एवं मार्गों के नाम कहता रहता था और हम सब उन्हें देखते जाते थे।

कौशाम्बी की सीमा में प्रवेश

इस प्रकार क्रमशः हम कल्माषवट के पास पहुँचे। वह पथिकों का टिकान, राष्ट्रीय मार्ग का केतु, धरती का पुष्ट पयोधर एवं कौशाम्बी की सीमा के मुकुट समान था। उसकी प्रचंड शाखाएँ बहुत विस्तीर्ण थीं एवं हरे पत्तों से घनी छाई हुई थीं। उस पर पक्षीवृंद अनगिनत थे।

वहाँ स्थित एक घर के आंगन में निर्मल श्वेत जलधर का उपहास करता चंदोवा बँधा था। वहाँ तरोताजा सुगंध से महकते मांगलिक उत्तम पुष्पों की सजावट की गई थी। वंदनमालाएँ द्वार पर लटकाई गई थीं और चौक में बड़ा स्वस्तिक बनाकर बीच में ये पर्णो से सजाकर नया कलश रखा था। रमणियों, स्वजनों एवं परिजनों से वह आंगन खचाखच भर गया था मानो उनसे उबल रहा हो। हमने उसमें प्रवेश किया।

इसके बाद वहाँ एकत्रित हुए निकटवर्ती स्नेही, स्वजन, आदरणीय एवं मित्रों के वृंद देखे। इससे हम विश्वस्त हुए। उन्होंने हम दोनों को सैकड़ों मांगलिक विधिविधान करवा के कल्माषवट के नीचे स्नान करवाया। स्नान के बाद प्रसाधन एवं उचित आभूषण से हमें सजाये गये और हमारे प्रसन्न स्वजनवृंद हम दोनों को श्वसुरगृह एवं पीहरगृह की ओर ले चले।

नगरप्रवेश

मेरे लिए उत्तम वाहन ले आये थे। मै उसमें चढकर सबके साथ आगे बढी। मेरे घर से बाहर निकल आये धात्री, सारसिका, वर्षधरों, वृद्धों, व्यवस्थापकों,

तरुणों एवं दासीजनों की अनुगामिनी होकर मैं प्रियतम के आगे प्रयाण करने लगी।

स्वर्णाभूषणों से विभूषित उत्तम अश्व पर आरूढ मेरा प्रियतम अपने मित्रों समेत मेरे पीछे आ रहा था।

मेरी भावजें अपने-अपने परिवार के साथ मुझे मिलने आयी थीं। वे भी उत्तम वाहनों पर चढकर मेरे साथ नगरप्रवेश के समुदाय में सम्मिलित हो गईं। बडे लोगों के संकट और उत्सव, दोष एवं गुण, आना और जाना, प्रवेश और निर्गमन आदि विषय लोगों को सर्वविदित होते हैं।

अगवानी

मांगलिक तुरही नाद, शुभ दक्षिणावर्त शकुन और अनेक मंगल निमित्तों की प्राप्ति के साथ नगरी के उन्नत देवद्वार (पूर्व द्वार) में होकर हमने कौशाम्बीमें प्रवेश किया।

हम राजमार्ग पर आ गये। वह मांगलिक एवं महकते पुष्पों से सजाया गया था। उसके दोनों ओर देखने के कुतूहल से प्रेरित नरनारी के झुंडों की भीड लग गई थी और ऊँचे प्रासादों की पंक्तियाँ एवं हाट-बाजारों की कतारें शोभा बढा रही थीं।

लोगों के मुखपद्मों का समूह हमारी ओर घुम गया था जैसे विकसित कमलवन हवा के झकोरे से एक ओर मुख मोड लेता है। उत्सुक जनता हाथ जोडकर प्रेम छलकती दृष्टि से मेरे प्रियतम को मानो आलिंगन दे रही थी। प्रवास से लौट आये प्रियतम को देखने से लोग अघाते न थे - जैसे मेघसंसर्ग से मुक्त शरद के चंद्र का उदय अधिकाधिक देख रहे हों।

राजमार्ग पर उपस्थित ब्राह्मणों की आशिष और अन्य लोगों की ओर से बधाई एवं हाथ जोड़कर किये जाते अभिवादन आदिका स्वीकार करने में व्यस्त मेरा स्वामी पार पाता न था। वह ब्राह्मणों, श्रमणों एवं बुजुर्गों को हाथ जोडकर मस्तिष्क नवाता, मित्रों को गले लगाता और अन्य सबके साथ संभाषण करता था।

कुछ लोग कह रहे थे : 'श्रेष्ठी के चित्रपट्ट में जो चक्रवाक व्याध से बिद्ध होकर मरा चित्रित था वह यह स्वयं ही है; और जो चक्रवाकी चक्रवाक के पीछे मौत से भेंटती अंकित की थी वही नगरसेठ की पुत्री होकर जन्मी है और उसकी

पत्नी बनी है। चित्र में जो युगल मृत्यु से भेंटा उसे परस्पर पुनः जोडकर दैव ने कितना सुंदर किया !

कुछ लोगों ने उसे श्लाघ्य कहा, तो कुछ सुंदर, कुछ उसे विनीत तो कुछ वीर, कुछ अभिजात कुछ उसे अनेक विद्याओं में प्रवीण, तो कुछ सच्चा विद्याओं का ज्ञाता कह रहे थे उसे इस प्रकार राजमार्ग पर अनेक लोगों की प्रशंसा प्राप्त करता हुआ मेरा प्रियतम मेरे साथ अपने देवविमान जैसे प्रासाद में आ पहुँचा।

प्रमुदित परिजन उठकर सामने आये और व्यवस्थित रखी पूजा सामग्री से उसका पूजन किया। ज्वार के डंठल वारे-फेरे और आशीर्वचन प्रदान किये। दही, लाजा एवं पवित्र पुष्पों से देवताओं की बडे पैमाने पर पूजा की गई। जहाँ पुष्पों की बदनवार लटकाई गई थी और कमलों से जगमगाते कलशों से मंडित थे, ऐसे चौपास परकोटे से सुन्दर लगते उस महालय में पूर्ण मनोरथ प्रमुदित मनसे मेरे प्रियतम ने प्रवेश किया। हम दोनों वहाँ ठहरे।

इसके पश्चात् मैं भी लोगों की बडी भीडवाले विशाल श्वसुरगृह के सुंदर प्रांगण में गई और मैंने किये अपराध के लिए लज्जा प्रगट की।

स्वागत और पुनर्मिलन

वहाँ श्रेष्ठी और सार्थवाह के साथ घर के सब स्वजन आये थे और ऊँचे आसन पर बैठे थे। हमें निहार रहे, साक्षात् देवतुल्य उन गुरुजनों के चरणों में हमने सिर टेक दिये। उन्होंने हमें गले लगाया, हमारे मस्तक सूँघे और अश्रुपूर्ण नेत्रों से बडी देर तक वे हमें देखते रहे।

इसके बाद हम मेरी सासजी के चरणों में झुके। अपार आँसू बहाती स्तनों से दूध उमडाती वे हमसे गले मिली।

तत्पश्चात् आँसू छलका रहे मेरे भाइयों के चरणों में मस्तक नवाकर विनयपूर्वक क्रमशः उन्हें प्रणाम किया।

हमने अन्य सब लोगों को भी हाथ जोडे और उनसे हाल-चाल पूछा। परिचारक वर्ग सारा हमारे पास आया और हमारे चरण छूए।

धात्री एवं सारसिका ने अबतक थामे अपने आँसुओं को निर्बन्ध बहने दिया जैसे लता पर से ओसबिन्दु झरने लगे हों।

सबसे मिल लेने पर श्रेष्ठी एवं सार्थवाह के लिए गजमुख के आकार वाली स्वर्ण की सुराही में मुँह धोने के लिए जल लाया गया ।

हे गृहस्वामिनी, हम स्वस्थ होकर जब वहाँ बैठे तब हमारे सब बांधवोंने कौतूहल से हमारे पूर्वभव के विषय में जानना चाहा । उनको मेरे पति ने चक्रवाक के रूप में हमारा सुन्दर भव, मृत्यु से हुआ वियोग, चित्रालेखन और समागम, घर से पलायन, नौका में रवाना, दूर अनजान प्रदेशी में पहुँचना, किनारे उतरना, चोरों द्वारा अपहरण, चोरपल्ली में प्राण संकट में, चोर द्वारा बंधनमुक्ति एवं पलायन, जंगल से बाहर निकलना, क्रमशः बस्ती में प्रवेश, कुल्माषहस्ती से मिलन - यह सारा हमने जिस प्रकार अनुभव किया था उस प्रकार कह सुनाया । आर्यपुत्र के मुख से हमारा वृत्तांत सुनकर हमारे दोनों पक्ष के स्वजन शोक एवं रुदन करने लगे ।

मेरे पिताजी ने हम से पूछा, 'तुमने मुझे यह बात पहले क्यों न बताई ?' बताते तो ऐसी आपत्ति न आती और न लांछन लगता ।

सज्जन अपने पर उपकार अल्प भी होने पर जब तक प्रत्युपकार करता नहीं तब तक ऋण समझ, कृतज्ञभाव से उसे बहुत बड़ा मानता है । जो पुरुष उपकार-बोझ तले दबने पर, बढकर वृद्धिगत होते उस को प्रत्युपकार द्वारा लौटाए बिना कैसे साँस ले सकता होगा ? वह जबतक अपने पर किये उपकार का दूना बदला नहीं दे सकता तबतक वह सज्जन मंदरपर्वत जितना भारी बोझ अपने सिर पर ढोता है । जिसने तुम्हें जीवनदान देकर हमको भी जीवनदान दिया उस मनुष्य को मैं निहाल कर दूँगा । ऐसे अनेक भावोद्गार प्रकट करके, हे गृहस्वामिनी, श्रेष्ठी एवं सार्थवाह ने हमारे मन आश्वस्त कर दिये ।

स्वजन, परिजन एवं इतर जनों को हमारे प्रत्यागमन से बहुत प्रसन्नता हुई । नागरिक आकर उस समय कुशल पूछने लगे । उनको, मंगलवादकों एवं मंगल पाठ करनेवालों को स्वर्ण और स्वर्णाभूषण देकर यथेष्ट सत्कार किया । कुल्माषहस्ती को प्रसन्नतापूर्वक एक लाख स्वर्णमुद्राएँ और मेरे स्वजनों की ओर से एक-एक आभूषण दिया गया ।

विवाहोत्सव

कुछ दिनों के बाद मेरे कुलीन परिवार के वैभव के अनुरूप एवं नगर

में अपूर्व ऐसा हमारा सुन्दर विवाहोत्सव मनाया गया। हमारा वह लग्नोत्सव इतना अनुपम हुआ कि लोगों के लिए विशेष दर्शनीय एवं सबका वार्तालाप-विषय बन गया। हमारे दोनों कुलीन परिवार निरंतर प्रीति एवं स्नेह से जुडकर सुखदुःख के परस्पर समभागी बने और एक ही कुटुंब जैसे हो गये।

मेरे प्रियतम ने पाँच अणुव्रत एवं गुणव्रत धारण किये और वह अमृत समान जिनवचनों के अगाध जल में मग्न हुआ। मेरे सारे मनोरथों की पूर्ति हो गई और उन्हें पूरे करा देनेवाले पूर्वकृत एक सो आठ आयंबिल के तप की समाप्ति का उत्सव मनाया।

यह हो जाने पर मैंने दासी से पूछा, 'मैं प्रियतम के साथ जब चली गई तब हमारे घर में और तुम्हारे पर क्या क्या गुजरा ?

सारसिका से प्राप्त वृत्तांत

इसके उत्तर में सारसिका कहने लगी, 'तुम मेरे गहने ले आओ' - कहकर तुमने जब मुझे रवाना किया तो मैं हमारे घर गई। घर के लोग कामकाज में व्यस्त थे। द्वार खुला और बिन-पहरा था इसलिए जरा सहमती हुई मैं महालय के अंदर चली गई।

वहाँ अंतःपुर के कमरे में से सब अत्यंत मूल्यवान आभूषणों से भरपूर करंडक लेकर मैं लौट आई। तुम्हें न देखने पर मैंने वहाँ सब जगह तलाश की। अंत में विषादग्रस्त चित्त से हाथ में रत्नकरंडक लेकर मैं घर वापस आई।

"हाय मेरी स्वामिनी" जैसे विलापवचन बडबडाती, अंतपुर में चारों ओर देखती, छाती पीटती मैं फर्श पर लुढक पड़ी। होश में आने पर अकेली ही विलाप करती मैं मन में इस प्रकार सोचने लगी :

"यदि कन्या की यह अत्यंत गुप्त बात मैं स्वयं जाकर नहीं कहूँगी तो श्रेष्ठी मुझे इसके कारण सजा करेंगे। तो अब मुझे वह बात ही बता देनी चाहिए। लम्बी रात पूरी होने तक तो वह भी दूर-दराज खिसक गई होगी और बात कह देने से मेरा अपराध भी कम हो जाएगा।"

मैंने मन में इस प्रकार सोचने में शय्या में निद्रारहित रात बिताई। प्रातःकाल श्रेष्ठी के चरणों में गिरकर तुम्हारे पूर्वजन्म के स्मरण की एवं प्रियतम के साथ भाग

निकलने की बात बताई ।

श्रेष्ठी का दुःख एवं रोष

यह सुनकर अत्यंत कुलाभिमानी श्रेष्ठीका मुखचंद्र ऐसा निस्तेज हुआ जैसा राहुग्रस्त कलानिधि । "धिक्कार है ! धिक्कार है ! तुमने कितना अकरणीय किया !" हाथ धुनते हुए श्रेष्ठी इस प्रकार कहने लगे, "हाय ! हमारा कुलीन गोत्र अपयश से घास के समान जलकर खाक हो जाएगा ।

वह स्वयं तो अपने घर गई इसलिए इसमें सार्थवाह का कुछ अपराध नहीं । अपना स्वच्छंदी हेतु पार पाने के लिए उतावली हो जानेवाली हमारी लडकी का ही दोष है ।

जिस प्रकार जलप्रवाह के उमड-घुमडने से नदियाँ अपने तट तोड़ देती हैं इस प्रकार दुःशील स्त्रियाँ कुल का गौरव तहस-नहस कर देती हैं ।

सैकडों दोष जगानेवाली और पद-प्रतिष्ठायुक्त कुनवे को मलिन कर देनेवाली पुत्री इस दुनिया में जिस कुल में पैदा नहीं होती है, वही सच्चा भाग्यवान है, क्योंकि पतित-चारित्रवाली पुत्री जीवनपर्यंत स्वभाव से भद्र एवं परवश सब बन्धनों के हृदय में दाहरूप बनती है ।

कपटपूर्वक मीठी बातें कर के अन्य में विश्वास जगाने वाली स्त्री का स्वरूप दर्पण के प्रतिबिंब-जैसा दुग्राह्य होता है ।"

इतने व्यग्र एवं व्यथित हो चुकने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "तुमने मुझे यह बात पहले क्यों नहीं बताई ? यदि बता देती तो मैं उसे ही उसका हाथ सौंप देता और तब यह कलंक न लगता ।" तब मैंने उत्तर दिया, "उसने अपने प्राणों की सौगंद देकर कहा था कि जब तक मैं जाकर उसे न मिलूँ तब तक तुम मेरा यह रहस्य छिपाये रखना । उसे दिये इस वचन के पालन के हेतु एवं मारे डर के मैं यह कह न सकी । आपको यह बात निवेदित न करने के अपराध के लिए मैं आपके चरणों में गिरकर कृपा की भीख माँगती हूँ ।"

सेठानी का विलाप

यह बात सुनते ही सेठानी तुम्हारे बिछोह एवं अपयश के दुःख से मूर्छित हो गई । उसे सहसा गिरकर बेसुध हुई देखकर परिवार के सब लोग दीनभाव से

चित्कार करके इस प्रकार रोने लगे जैसे गरुड के भय से काँपता नागकुल ।

सुध आने पर सेठानी अनेक प्रकार से विलाप करती रोने लगी । इससे अनेक परिजनों को भी रुदन आया ।

हे स्वामिनी, उस समय तुम्हारे सब भाई, भावजें एवं कई परिजन भी तुम्हारे वियोग के दुःख से अति करुण रूदन करने लगे पुत्री स्नेह के वश करुण क्रंदन करती कोमलहृदया तुम्हारी अम्मा से सेठ ने विनीत भाव से इस प्रकार अभ्यर्थना की :

"विशुद्ध शील-कुल के यश में लुब्ध लोगों के घर पुत्री उत्पन्न होकर वह दो अनर्थों का कारण बनती है : पुत्रीवियोग और अपयश । पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप जो विधिनिर्मित होता है उस प्रकार शुभाशुभ घटित होने पर सब स्ववश अथवा अवश बनते हैं ।

शील एवं विनयपूर्ण मेरी बिटिया को दोष देना उचित नहीं । कुटिल विधाता द्वारा ही वह इस संसार में प्रेरित हुई है । उसे जो अपने पूर्वजन्म का स्मरण हुआ और अपने उस जन्म के पति के साथ चली गई तो उसमें उससे कोई बडा अपराध नहीं हुआ ।"

"इसलिए मेरी बच्ची को तुम वापस ले आओ । वह कोमल, पतली, निर्मलहृदया, अनेकों की प्यारी मेरी बिटिया को बिना देखे मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकूँगी ।"

इस प्रकार अत्यंत करुण वचन कहकर सेठ के चरणों में गिरकर सेठानी ने सेठ की अनिच्छा थी फिर भी उसने मनुहारपूर्वक सेठ से "अच्छा" कहलाया ।

तरंगवती की तलाश और उसका प्रत्यानयन

सेठानी का अतिशय अनुरोध बढता गया । सेठ को अंत में कहना पडा, "तुम धैर्य रखो, मैं तुम्हारी बेटी को ला देता हूँ । सार्थवाह के घर से यदि सुराग मिले तो मैं प्राप्त करता हूँ ।"

"तुम क्यों उसे बाहर ले गई ?" ऐसे ऐसे अनेक प्रश्नो एवं वाग्बाणों से घर के सभी लोगों ने रोषपूर्वक मुझे बींधा और पाठ पढाया

हमारे जो लोग तुम्हारी खोज में निकले थे वे सब इस समाचार के साथ लौट आये कि तुम लौट रही हो । हे सुन्दरी, इससे सब आनंदित हुए ।

इस प्रकार हे गृहस्वामिनी, मेरे पूछने पर सारसिका ने जिस प्रकार जो जो हुआ वह सब मुझे विस्तारपूर्वक कह सुनाया । मैंने भी आर्यपुत्र की सूचनानुसार गुप्तता अक्षुण्ण रखने के हेतु से क्यों उसकी प्रतीक्षा किये बिना शीघ्रता से भाग निकलने का निर्णय लिया था इसकी स्पष्टता उसके सामने की ।

दंपती का आनंद-विनोद

हमारे दांपत्य के कुछ दिन बीते, तब ससुरजी ने विदग्ध आचार्यों की निगरानी में पुरुषपात्र रहित एक नाटक तैयार करवाया और मेरे प्रियतम को दिया।

हम अपने स्नेहीजनों, बन्धुओं, पूज्यों एवं मित्रों के समूह के बीच उत्तम महालय में रहते थे और कमलसरोवर के चक्रवाकों के समान क्रीडा करते थे।

प्रेमकेली के प्रसंग आते थे और उनसे हमारा अनुराग पुष्ट होता था । इससे हमारे हृदय एकरूप हो गये । हम एकदूसरे से एकाध पल के लिए भी अलग नहीं रह सकते थे ।

प्रियतम के संग बिना अल्प समय भी मुझे बहुत लम्बा लगता था । सारा समय हम निबिड प्रेमक्रीडा में निरंतर रत रहते थे । स्नान, भोजन, बनाव-सिंगार, शयन, आसन इत्यादि हृदयंगम शारीरिक भोगों में लगे रहने के बाद हम दिनान्ते नाटक देखते थे । महकते अंगराग लगाते, पुष्पमालाएँ पहनते और परस्पर एकदूसरे में आसक्त ऐसे हम निपट निश्चिंत एवं सुख में दिन गुजारते थे ।

ऋतुचक्र

इस प्रकार चैन की वंशी बजातें, यथेष्ट विषयसुख के सागर में गोते लगाते हुए हमनें अनेक गुणमयी, निर्मल ग्रहनक्षत्रों से सुहावनी, शरदऋतुएँ व्यतीत की।

इसके बाद उसकी अनुगामिनी शिशिर ऋतु की शीत का उपद्रव फैल गया । अंग ठिठुर गए । रातें अधिकाधिक लम्बी होती चलीं । सूर्य शीघ्र भाग जाता था और बेहद सनसनाती ठंडी हवा चलने लगी थी । उस समय चंद्र, चंदनलेप, मणि-मोतियों का हार एवं कंकण, क्षोम के पटकूल एवं रेशम के वस्त्र सब अरुचिकर हो गये ।

शिशिर के बीतने पर हेमंत ऋतु की पारी आई । वह हिम के प्रताप एवं प्रचंड बल से भयावनी लग रही थी । वह विषयसुख के लिए प्रतिकूल होने से पति के संग में रहने में बाधा बन गई ।

अब आम्रवृक्षों में मंजरियाँ फूट पड़ीं । सिकुड देनेवाली शीत का अंत हुआ । जिसमें लोग सुखवास अनुभव करते हैं, कामप्रवृत्ति का बसंत मास आया । उस समय हे गृहस्वामिनी, जो युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे उनका (डालियों का) भी वध किया गया और निरपराधों को भी बाँध दिया गया थे ऐसे रस्सों के झूले जगह जगह लोगों ने डाल दिये । उस समय दुःखी लोगों पर अनुग्रह करने को तत्पर होते हुए भी बंधन में जकड़े हिंदोलों पर प्रियजनों के संग परितोषपूर्वक झूलने के लिए दौड पडते थे ।

उपवनविहार

अद्‌भुत दृश्योंवाले प्रमदवन में तथा मदन, बाण और कोशाम्रवृक्षोंवाले नंदनवन में देवतुल्य हम अनुपम क्रीडाओं में रत रहते थे ।

उपवन में मानो पुष्पसिंगार सजी वनिताओं जैसी तरुलताएँ थीं । उनमें अतिमुक्ता का पुष्प मानो चंद्रकिरण का पराभव करता दिखाई देता था । मेरे प्रियतम ने भाँति भाँतिके पुष्प आदि बताये और उनकी प्रशंसा के मिष्ट वचन कहते हुए मेरे केशमें गूँथे ।

वहाँ विहरते समय वृक्षों, पुष्पों आदि के विविध रूपरंग एवं आकार-प्रकार प्रीतिसभर एवं मुद्रित मन से हम निहारते थे ।

श्रमण के दर्शन

वहाँ उस समय अशोक वृक्ष की छाया में, शुद्ध शिलापट्ट पर शोकमुक्त एवं निर्मल चित्त से बैठे एक पवित्र श्रमण को हमने देखा ।

मैंने अपने मुख पर लगाया चूर्ण, तिलक, पत्रांकन आदि को तुरंत पोंछ डाला, पैरों की पादुकाएँ निकालकर छोड दीं, केशकलाप में से सारे कुसुम निकालकर फेंक दिये ।

प्रियतम ने भी उसी प्रकार पादुकाएँ निकाल कर रख दीं और पुष्प दूर किये । इसलिए कि गुरु के पास ठस्सेदार सज-धज के साथ उपस्थित होना उचित

नहीं।

इसके बाद हमने विनय से शरीर नवाया आकुल हुए बिना त्वरा से संयमपूर्वक असंख्य रत्नों के निधि समान उनके दर्शन करके हमने परितोष पाया।

वंदना

वे श्रमण माया, मद और मोहरहित थे; निःसंग थे और धर्मगुण के निधि समान थे। उन्होंने ध्यान के उपयोग से काया एवं वचन की सब प्रवृत्ति बंद की थी। हम उनके निकट गये और करकमलों की अंजलि रचकर मस्तक पर धरी। फिर सविनय, परम भक्तिभाव से उस क्षण संयम का बांध जैसा सामायिक करने लगे।

साथ-साथ उग्र उपसर्ग भी सहनीय हो ऐसा समग्र गुणनिधि, संपूर्ण कायोत्सर्ग हमने अव्यग्र चित्त से किया। कायोत्सर्ग कर चुकने के बाद विनयपूर्वक सर्व आवश्यक द्वारा शुद्ध, कर्मविनाशक त्रिविध वंदना पर्याप्त झुककर हमने की।

इस प्रकार विशेष रूप से तो हमने नीच गोत्र की निवारक वंदना की। हमने उनसे तपस्या में प्राशुक विहार की प्राप्ति के संबंध में जानने की पृच्छा की।

तब उन्होंने इस प्रकार आशिष दी : 'तुमको सर्वदुःखों का मुक्तिदाता, सर्व विषयसुख का क्षायक, अनुपम सुखरूप, अक्षय एवं अव्याबाध मोक्ष प्राप्त हो।'

धर्मपृच्छा

उनके आशीर्वचन शिरोधार्य किये और हम भूशुद्धि करके दोनों मुदित मन से नीचे बैठ गये। हमने हृदय में संयम धारण किया और विनय पूर्वक झुककर उनसे निश्चित सुखकर एवं जरा-मृत्यु निवारक धर्म पूछा।

तब उन्होंने शांति से आगमों में सविस्तर जिसका अर्थ प्रतिपादित है वह बन्ध एवं मोक्ष तत्त्वकादर्शक, कर्णमधुर रसायण समान धर्म इस प्रकार कहा :

धर्मोपदेश

'प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और जिनवर उपदेशित आज्ञा : ये चार बंध एवं मोक्ष के साधन हैं।

जो द्रव्य सामने विद्यमान, इन्द्रिय के गुणों से युक्त हो, जिसके मुख्य गुण-

दोष स्पष्ट दिखाई देते हों और जो लोक में सर्व सिद्ध हो उस द्रव्य को प्रत्यक्ष विषय जानो ।

जिस द्रव्य के गुण नहीं दिखाई देते, परंतु जिसके गुणांश से जो मुख्यतः अनुमान किया जा सकता है और इस प्रकार जिसके गुणदोष ज्ञात हो सके उस द्रव्य को अनुमान का विषय मानो ।

तीनों कालों के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष द्रव्यों के श्रुतज्ञान द्वारा जो ग्रहण कर सकें उसे उपदेश कहा जाता है ।

जीवतत्त्व

जिनवर का दर्शन है कि जीव सर्वदा वर्ण, रस, रूप, गंध, शब्द और स्पर्श आदि गुणों से रहित है । उसे आदि-अंत भी नहीं ।

वह शाश्वत आत्मा है, अयोनि है, इन्द्रियरहित है । वह इन्द्रियों से मुक्त है, अनादि एवं अनंत है । उसमें विज्ञानगुण है ।

देहस्थ होने के कारण, जो सुखदुःख का अनुभव करता है, वह नित्य है और विषयसुख का ज्ञाता है उसे आत्मा जानो ।

आत्मा इन्द्रियगुणों से अग्राह्य है; उपयोग, योग, इच्छा, वितर्क ज्ञान एवं चेष्टा आदि गुणों से उसका अनुमान हो सकता है; विचार संवेदन, संज्ञा, विज्ञान, धारणा, बुद्धि, ईहा, मति एवं वितर्क आदि जीव के लिंग हैं ।

शरीर में जीव विद्यमान है या नहीं इस पर जो चिंतन-संशय करता है वही आत्मा है, क्योंकि यदि जीव ही नहीं है तो संशय करनेवाला ही कोई नहीं होता ।

कर्म की शक्ति से जीव रोता है, हंसता है, बनाव-सिंगार करता है, डरता है, सोचता है, त्रस्त होता है, उत्कंठित होता है और क्रीडा भी करता है ।

शरीर में विद्यमान जीव बुद्धि से जुडी पाँच इन्द्रियों के गुणों से गंध लेता है, सुनता है, देखता है, रसास्वाद करता है और स्पर्श अनुभव करता है ।

मन, वचन एवं काया की क्रिया द्वारा होती त्रिविध प्रवृत्ति से जुडने पर जीव शुभ या अशुभ कर्म में फँस जाता है ।

जीव आसक्त होने पर कर्म करने लगता है और विरक्त होने पर कर्म त्याग देता है - यही है जिनवर से दिया गया बँध एवं मोक्ष के उपदेश का संक्षेप।

कर्म के कारण जिसका स्वरूप ढक गया है ऐसा जीव, गागर में मथन की क्रिया में रई की भाँति बारबार यहाँ बँधता है तो वहाँ छुटकारा पाता है।

क्वचित् कर्मराशि को त्यजता है तो क्वचित् ग्रहण करता हुआ संसारयंत्र में सन्नध जीव रहँट की तरह चक्कर काटता है।

शुभ कर्म के सुयोग से वह देवगति पाता है, मध्यम गुण से मनुष्यगति, मोह से तिर्यंचगति और पापकर्म से नरकगति पाता है।

कर्म

रागद्वेष के अनिग्रह से कर्म उत्पन्न होता है - जिन्हें जिनवर ने कर्मबंध के उद्भावक बताया है।

प्राणिवध, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति, जुगुप्सा, मन-वचन-काया का अशुभ योग, मिथ्यादर्शन, प्रमाद, पिशुनता, अज्ञान, इन्द्रियों का अभिग्रह - ये सब संकल्पयुक्त बनने पर आठ प्रकार के कर्मबंध के कारण बनते हैं ऐसा जिनवर ने निरूपित किया है।

जिस प्रकार तैलाभ्यंग किये हमारे अंग पर गर्द चिपकती है वैसे रागद्वेषरूप तेल मर्दित व्यक्ति को कर्म चिपकता है, यह समझ रखना।

दारूण द्वेषाग्नि द्वारा कर्म को जीव विभिन्न रूपों में परिणित करता है - जिस प्रकार जठराग्नि प्रत्यक्ष होकर पुरुष के औदारिक शरीर में विविध परिणाम दिखाता है उसी प्रकार कर्मशरीर से जुडे जीव को जानो।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष, नाम, गोत्र एवं अंतराय - ऐसे आठ प्रकार के कर्मों के छः परिमित भेद और ग्रहण, प्रदेश एवं अनुभाग अनुसार विभाग बनते हैं।

जिस प्रकार जमीन पर छिडक दिये विविध प्रकार के बीज अपने विविध गुणानुसार पुष्प एवं फल के रूप में अनेकविधता प्राप्त करते हैं वैसे योगानुयोग बाँधा गया अशांत गुणयुक्त एक नया कर्म विविध विपाक के रूप में अनेकता प्राप्त करता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव को लक्ष्य करके कर्म का उदय पाँच प्रकार से बताया है ।

संसार

इस अपरिमित संसार में उस कर्म के फलस्वरूप जीव परिभ्रमण किया करता है । संसार के कारण से भव का उपद्रव होने पर जीव जन्म प्राप्त करता है । जन्म के कारण शरीर, शरीर के कारण इन्द्रिय-विशेष, इन्द्रिय एवं, विषय के कारण मन, मन के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण जीव संवेदन का अनुभव करता है और संवेदन के कारण वह तीव्र शारीरिक एवं मानसिक दुःख भुगतता है ।

वह यह दुःख दूर करने के लिए और सुख पाने के लिए पापकर्म करता है और उस पाप के फलस्वरूप जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसता है । जीव के कर्म उसे क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव की योनि में घुमाते हैं । कर्मानुसार चांडाल, मुष्टिक, पुलिंद, व्याध, शक, यवन, बर्जर आदि विविध मनुष्यजातियों में जीव जन्म प्राप्त करता है ।

इन्द्रियों और शरीर की निर्मलता एवं पूर्णता, परवशता एवं प्रभुत्व, सौभाग्य एवं दुर्भाग्य, संयोग और वियोग, उच्च अथवा नीच गोत्र, आयुष्य और भोगों की वृद्धि अथवा क्षय, अर्थ और अनर्थ - जन्म के कारण अपने कर्मों में ग्रस्त जीव इस प्रकार के तथा अन्य अनेक सुखदुःख अनंत बार भोगता है ।

मोक्ष

परन्तु जीवों के मनुष्य-भव की केवल इतनी विशेषता है कि सब दुःखों में से मुक्ति दिलानेवाले मोक्षपद में इसी भव से वे जा सकते हैं ।

अज्ञान रूप वृक्षों के घने इस संसाररूप महावन में जिनवरों ने ज्ञान और आचरणों को निर्वाण पहुँचने का राजमार्ग समान बताया है ।

संयम और योग द्वारा कर्मप्राप्ति रोककर और बचे कर्मों की तप द्वारा शुद्धि करके और क्रमशः सभी कर्मों का क्षय करने के बाद कर्मविशुद्ध हुआ जीव सिद्ध बनता है ।

एक समय वह यहाँ से निर्विघ्न परमपद में पहुँचता है; संसार के भय

से मुक्त होकर वह अक्षय सुखदायक मोक्ष पाता है ।

अनेक भवों के भ्रमण दरम्यान प्राप्त हुए कर्मों से मुक्त होकर वह निःसंग, सिद्धों की स्वभावसिद्ध ऊर्ध्वगति को प्राप्त करता है ।

मुख्य देवलोक के ऊपर अर्थात् तीन लोक के शीर्षस्थान पर अर्जुन और शंख जैसी श्वेतवर्णी, छत्ररत्नवाली पृथ्वी आई है। उसके सिद्धि, सिद्धिक्षेत्र, परमपद, अनुत्तरपद, ब्रह्मपद, लोकस्तूपिका और सीता आदि नाम हैं ।

इस इषत्प्रागभार अथवा सीता से एक योजन दूर लोकांत है । उसके ऊपर के तीसरे भाग में ही सिद्धों का अवस्थान होने की बात कही गई है ।

सब भावों के यथार्थ रूप के ज्ञाता सिद्धने रागद्वेष निःशेष किये होते हैं। इसलिए वह उनसे पुनः लेपित नहीं होता ।

इस भव को छोडने की अंतिम क्षणों में उसका जिन प्रदेशों के संचययुक्त संस्थान होता है वही संस्थान उसकी सिद्धावस्था में होता है । वह आकाश में, सिद्धों से भरपूर सिद्धालय में, अन्य अनेक सिद्धों के साथ अविरुद्ध भाव से बसता है ।

उस श्रमणने इस प्रकार उपदेश दिया । वह पूरा हुआ तब हे गृहस्वामिनी, हम हर्ष से रोमांचित हुए और मस्तक पर अंजलि रचकर उनसे कहा, 'आपका अनुशासन हम चाहते हैं ।'

आगे मेरे प्रियतम ने उस साधु को विनयपूर्वक वंदन करके कहा, 'आप भरयौवनावस्था में निःसंग बने इससे आपका दीक्षित होना सराहनीय है । कृपया यह बताइए कि आपने यह श्रामण्य किस प्रकार अपनाया ? हे भगवन्, मुझ पर अनुकंपा कीजिए और कहिए । मुझे वह जानने का अत्यंत कुतूहल है ।'

तिस पर उस प्रशस्यमना और जिनवचनों में विशारद श्रमणने मधुर, संगत और मितवचनों में निर्विकार और मध्यस्थ भाव भरकर इस प्रकार कहा :

श्रमण का पूर्ववृत्तांत

चंपा के पश्चिम में स्थित एक जनपद के निकट का अटवीप्रदेश अनेक मृग, महिष, तेंदुओं और वन्य गजों से सभर था । उस जंगल की गहराई में एक

वस्ती थी जिसमें निंद्य कर्म करनेवाले जंगल के पशुओं की मौत जैसे व्याधों का जनपद था ।

उनकी झोंपडियों का आँगन प्रदेश, वहाँ सुखाये गये रक्त टपकते मांस, चमडे और चरबी से छा जाने से संध्या का दृश्य धारण कर रहा था।

व्याधपत्नियाँ लाल कँबल की ओढनियाँ ओढ कर लहू चूता मांस गोद में भर-भरकर आती-जाती दिखाई पडती थीं ।

कुछ व्याधपत्नियाँ मयुरपिच्छ से सजी-सँवारी ओढनियाँ ओढकर हस्तिदंत के मूसलों से धान कूटने का काम कर रही थीं ।

व्याध का पूर्वभव

इससे पूर्वभव में प्राणियों का घातक, हाथी के शिकार में कुशल, मांसाहारी शिकारी के रूप में वहां मेरा जन्म हुआ था । मैं प्रतिदिन अभ्यास कर के धनुर्विद्या निपुण हुआ और प्रबल प्रहार करने की शक्ति मैंने प्राप्त की । मैं तिरंदाज के रूप में प्रख्यात हुआ और 'अमोघकांड'नाम से सर्वत्रविख्यात हुआ ।

मेरा पिता सिंह भी दृढप्रहारी एवं अचूक निशानेबाज था । वह अपने काम से विख्यात था । मेरे पिता को बहुत प्यारी और वन्य वेशधारिणी अटवीश्री नाम की वन्यबाला मेरी माता थी । जब मैं वयस्क हुआ और एक ही बाण से हाथी को मारगिराने लगा, तब मेरे पिताने मुझसे कहा, 'तुम सुनो और ध्यान में रखो कि हमारा कुलधर्म क्या है ।

व्याध का कुलधर्म

व्याधों के कोश एवं गृह के रक्षक ऐसे श्वान, और बीज डालने में समर्थ ऐसे यूथपति हाथी को तुम कभी न मारना ।

बच्चों की देख-भाल करने में लीन, पुत्रस्नेह से पंगु और व्याध से न डरनेवाली हथिनी को भी तुम न मारना ।

अकेला छोड़ दिया न हो ऐसे छोटे, भोले, दूधमुँहे मकुने हाथी का बच्चा को भी तुम मत मारना - समय बीतने पर बच्चा बडा हाथी होगा ऐसा हिसाब लगाना ।

कामवृत्ति प्रेरित, बच्चे की माता बननेवाली हथिनी जब क्रीडारत हो तब उसे हाथी से अलग मत करना ।

यह कुलधर्म तुम पालना । जो कुलधर्म को नष्ट करता है उसके कुल की दुर्गति होती है । बेटे, बीज नष्ट न करना और कुलधर्म की भलीभाँति रक्षा करता हुआ तुम अपना धंधा करना और यह बात तुम अपनी संतान को भी कहना ।'

व्याध का जीवन

पिता के उपदेशानुसार मैं यथायोग्य आचरण में दृढ रहकर, व्याध का व्यवसाय करता था और वन्य प्राणियों से भरपूर उस जंगल में शिकार करके गुजारा करता था। गैंडा, वन्य बैल, हिरन, वन्य भैंसा, हाथी, सूअर आदि को मैं मारता था ।

समय बीतने पर बुजुर्गों ने मेरी ही जाति की मनपसंद सुंदर, सुरतसुखदा तरुणी मुझसे ब्याही । वह स्तनयुगल से सोहती, स्थूल एवं पुष्ट नितंबिनी, मृदुभाषिणी, निर्मल हास्य करनेवाली, मुख से चंद्र को लज्जित करती थी । उसके नेत्र कमल समान रतनारे थे और यौवनोचित गुणग्राम से मंडित अंगना वह सूक्ष्म एवं श्याम रोमराजि-राजति थी । उस श्यामा का नाम वनराजि था ।

सुंदर और आनंददायक रूप, भूने मांस का भोजन, मदभर रूपवती कामिनी और कोमल पर्णशय्या - ये व्याधजीवन के शाश्वत सुख हैं । जिनको व्याधजीवन स्वाधीन होता है उनको कौन मनमाना सुख सुलभ नहीं ?

हाथी के शिकार पर

सुरापान से तृप्त होकर व्याधसुंदरी याने मेरी पत्नी की भुजाओं के आश्लेष में बद्ध, पुष्ट पयोधर पीडित, सुरतश्रम से क्लान्त ऐसा मैं एक प्रातःकाल उठा।

मयूरपिच्छ के ध्वजमंडित और तरोताजे रक्त छिडके हुए व्याधों की देवी के स्थानक को मैं गया और प्रमुदित चित्त से प्रणाम किया । उन दिनों ग्रीष्मऋतु थी। मैंने धनुष्यबाण लिया, कंधे पर तुम्बा लटकाया और शिकार के लिए जंगल में प्रस्थान किया ।

मैं वन्य फूलों से बाल वेष्टित किये, पैरों में जूती पहन ली और आग

जलाने के लिए धनुष्य के पीछे के भाग में अरनी बाँध ली ।

इसके बाद मैं हस्तिदंत की प्राप्ति के लिए वन्य हाथी की तलाश में चल पडा । जंगल में भटकते-भटकते थक गया और आखिर गंगाकिनारे पहुँचा ।

वहाँ मैंने पहाड़ी और वनविस्तार में रहनेवाला, पर्वत जैसा प्रचंड एक हाथी को नहाकर बाहर निकलते देखा । उस अपूर्व हाथी को देखकर मुझे लगा कि यह हाथी गंगातट के वनमें से आया नहीं लगता । जो हाथी गंगातट के विभिन्न घने वृक्षों के वन का रहनेवाला होता है उसका लक्षण यह है कि उसके बाल स्पर्शकोमल होते हैं । परंतु यह तो दंतविहीन है और किसी अन्य वन से आया लगता है । और व्याधकुल के रक्षण के लिए उसका वध करने में कोई बाध नहीं ।

अकस्मात् चक्रवाक वध

इस संकल्प के साथ मैंने व्याधकुल की रक्षा के लिए उस हाथी पर प्राणघातक बाण छोड़ा ।

उसी क्षण एकाएक कोई कुंकुमवर्ण का चक्रवाक काल के पूर्वनियोग से आकाशमार्ग में उड़ा और बाण से बींध गया ।

वेदना से उसके पंख निस्पंद हो गये और वह पश्चिम समुद्र में केसरिया रंग की सांध्यबेला में लुढकते कुंकुमवर्ण के सूर्य के समान जलसपाटी पर गिरा ।

शरप्रहार से जिसके प्राण निकल गये हैं उस चक्रवाक की अनुगामिनी शोकार्त एवं व्याकुल चक्रवाकी गिरे हुए चक्रवाक के पास आ पहुँची ।

'अरेरे ! धिक्कार है ! मैंने इस मिथुन का संहार किया ! - इस प्रकार मैं व्यथित हो गया और हाथ मलता हुआ वह दृश्य देखता रहा । वह हाथी चला गया और मैंने दया एवं अनुकंपा से प्रेरित हो तुरंत उस पक्षी का वहाँ तट पर अग्निसंस्कार किया ।

चक्रवाकी और व्याध की अनुमृत्यु

वह चक्रवाकी भी अपने सहचर के प्रति अनुराग से प्रेरित होकर उस पर मंडराकर उस चिता की आग में कूद पड़ी और कुछ क्षणों में भस्म हुई । यह उसकी परिणति देख मेरा दुःख अधिक घनिष्ठ हो गया : 'अरेरे ! मैंने इस भले

चक्रवाकमिथुन का क्यों विनाश किया ?'

मैं सोच में पड़ा, 'अरेरे ! अनेक पूर्वपुरुषों ने जिसका जतन किया उस हमारे कुलधर्म, परम्परा एवं वंश की कीर्ति तथा वचन का मैंने दुष्टतापूर्वक विनाश क्यों किया ? निर्लज्ज बनकर जिस पुरुष ने अपने ही हाथों अपने कुलधर्म को नष्ट किया होता है, उसकी ओर लोग घृणा करते हैं । अब मैं जीवित रहकर क्या करूँगा ?' इस प्रकार मानो कृतांत ही मेरी बुद्धि को प्रेरित कर रहा हो ऐसे विचार मुझे आ रहे थे ।

फलतः चक्रवाक की चिता के लिए जो बहुत सारे ईंधन जुटा कर मैंने आग जलाई थी उसमें कूदकर मैं भी अल्प क्षणों में जल मरा । इस प्रकार कुलधर्म एवं व्रतरक्षा में सर्व प्रकार से संयत एवं तत्पर मैं ऐसा निजकी निंदा, जुगुप्सा, गर्हणा करता हुआ, संवेगपूर्ण चित्त से धर्मश्रद्धा से विशुद्ध चित्त मैंने आत्महत्या की, फिर भी नर्क में न गया ।

श्रीमंत कुल में व्याध का पुनर्जन्म

इसके पश्चात गंगानदी के उत्तर तट पर रहनेवाले, धनधान्य एवं स्वजनों से समृद्ध एक श्रीमंत व्यापारी के कुल में मेरा जन्म हुआ । किसानों से भरेपूरे काशी नाम के रमणीय देश में जिस कुल में मेरा जन्म हुआ वहाँ सर्वोत्तम गुणविख्यात उत्सव मनाया गया ।

उस देश के मनोरम कमलसरोवर, उद्यान एवं देवमंदिर देखने में लीन हो जाते प्रवासियों की गति धीमी पड़ जाती थी ।

वहाँ सागरपत्नी गंगा द्वारा जिसके प्राकार की रक्षा होती थी ऐसी द्वारिका समान वाराणसी नाम की कृष्ट नगरी थी । वहाँ के मानी एवं विनयी व्यापारी लोग इतने समर्थ थे कि प्रत्येक एक करोड के माल की खरीद-बिक्री कर सकता था।

वहाँ के राजमार्ग पर स्थित भवन इतने उत्तुंग थे कि सूर्य भूमि के दर्शन केवल तब कर सकता था जब वह आकाशतल में बीच बीच रह गई खाली जगह में प्रवेश करता था । यहाँ रुद्रयश मेरा नाम रखा गया और क्रमशः मैं लेखन आदि विविध कलाएँ सीखा ।

द्यूत की लत

अपकीर्ति का मूल, लोगों के व्यसन का कारण, सर्व दोषों का स्रोत ऐसे घूत का मैं व्यसनी था। कपटी, उग्र, असाधु, लाभलोभी और सब सद्‌गुणों से वंचित लोग ही इस विनाशकारी लत का सेवन करते हैं।

मृगतृष्णा समान द्यूत की लत के चंगुल में फँसा मैं कुलपरंपरा परगिरी उल्का समान चोरी भी करने लगा। सेंध लगाकर घरों में चोरी करना, राहगीरों का वध करना उनको लूट लेना वगैरह अपराधों के कारण स्वजन मेरा तिरस्कार करने लगे। द्यूत के व्यसनी हो गया था इससे पराया धन हडप लेने की वृत्ति भी बन गई थी। लोभ के भूत के आवास जैसा मैं रातभर हाथ में तलवार लेकर चक्कर लगाता रहता था।

नगरी का त्याग और चोरपल्ली में आश्रय

नगरी के कोने कोने के लोग मेरे अपराधों को जान गये। इससे आत्मरक्षा मुश्किल हो गई। आखिर विन्ध्य पर्वत की ओट में स्थित खारिका नामक अटवी में मैंने आश्रय लिया।

वह सैंकडों पशु-पक्षियों की शरण एवं चोरसमूहों के मुकाम जैसी अनेक प्रकार के वृक्षसमूहों की घनी घटा के कारण गहन अंधकारपूर्ण थी।

वहाँ से निकलकर विन्ध्य की गिरिमाला से ढकी और जिसका एकमात्र प्रवेशद्वार था ऐसी सिंहद्वार नाम की पल्ली में आकर मैं बस गया।

वह स्थान व्यापारियों एवं सार्थवाहों को लूटनेवाले, परधन हर लेनेवाले और अनेक दुष्कर्म करनेवाले चोरों का अड्डा था। वे लोगों को ठगने, धन छीन लेने के अनेकानेक उपाय एवं रीतों के जानकार थे और निपट अधर्मी एवं अनुकंपाशून्य थे।

उनमें कुछ शूरवीर ऐसे भी थे जो ब्राह्मणों, श्रमणों, स्त्रियों, बच्चों, बूढों एवं दुर्बल लोगों को सताते नहीं थे। वे केवल वीरपुरुषों से भीडंत ठानते। सैंकडों लडाइयों में जिन्होंने नाम कमाया था और जो बख्तरधारी घोडों पर सवार होकर डाकाजनी करते एवं विजयी बनते ऐसे चोर भी वहाँ निवास करते थे।

चोरसेनापति

चोरसमूह जिसकी शरण सुख से लेते, युद्धों में जो सूर्य समान प्रतापी

था, तलवारों के प्रहार एवं घावों के चिह्नों से जिसका बदन खुरदुश हो गया था, जो पाप का भरपूर सेवन करता था, जो पराये धन का विनाशक, साहसिक, और चोरों का आश्रयदाता था और सुभट के रूप में जिसकी शक्ति की बहुत ख्याति थी ऐसा शक्तिप्रिय नाम का चोर उनका नायक था। अपने भुजबल के पराक्रम से सुभट की उत्तमता प्रगट करनेवाला यशस्वी सेनापति का पद उसने प्राप्त किया था।

मैंने उसका आश्रय लिया। उसने मेरे साथ बातचीत की और मुझे स्वीकार किया। अन्य सुभटों ने भी मेरा सम्मान किया और मैं मान-सम्मानपूर्वक वहाँ सुख से रहने लगा।

व्याध की क्रूरता

वहाँ रहकर मैंने अनेक युद्धों में पराक्रम कर दिखाये जिसके फलस्वरूप दुष्कीर्ति प्राप्त यह की कि मैं अल्प समय में पापभट के रूप में विख्यात हो गया था।

धोखा देकर तलवार से पीठ पर पीछे से प्रहार करके हत्या करने की क्षुद्रता के लिए मैं सुभटों में सेनापति का सबसे अधिक प्रीतिपात्र बन गया था।

कोई मुझसे लडता हो या न लडता हो, सामना करता हो या सामना न करता हो, एवं युद्ध से भागने लगा हो, मैं ऐसी किसी को भी जीता न छोडता। इसलिए पल्ली के लोगों ने मुझे 'बली', 'निर्दय'और 'यमदूत' जैसे मेरी दुष्टता के सूचक नाम प्रदान किये थे।

घूत में जीतकर प्राप्त किये धन से मैंने मित्रों का अपनी समृद्धि से आदर-सत्कार किया और इस प्रकार मैं सब का माननीय बन गया। अपने घर के प्रति भावनाशून्य होकर मैं पल्ली में इस प्रकार कालदंड एवं यमदंड समान आचरण करता हुआ दिन गुजारने लगा।

चोरों का तरुण दंपती को बंदी बनाना

किसी एक समय धंधा करने चोर गये और वे कोई तरुण दंपती को पकडकर पल्ली में ले आये। देवी को बलि चढाने के लिए उन दोनों को वे सेनापति के पास ले आये और उन तरुण और तरुणी को सेनापति को दिखाया।

अपने अनोखे रूप से तरुणी ने चोरों के हृदय चुरा लिए। उस अप्सरा समान तरुणी को कात्यायनी देवी के डर के कारण अपनी औरत बनाने का प्रयत्न नहीं किया और देवी को पशुबलि चढाने का निश्चय किया।

चोरों ने उस तरुण दंपती का रत्नों से भरा करंडक तथा अन्य भी जो मूल्यवान वस्तुएँ उन्हें प्राप्त हुई थी, सेनापति को सोंप दिया। सेनापति ने मुझे आज्ञा की कि इन दोनों का नवमी के दिन कात्यायनी के यज्ञ में महायज्ञ पशु के रूप में बलि चढाना है। उन्हें कब्जे में रखने के लिए मुझे सौंप दिया। आँसू बहाती आँखोंवाले और मृत्यु-भय से स्तब्ध हुए उन दोनों को मैं अपने घर ले आया। उस तरुण को बंधनों से जकडा, दालान में सहीसलामत रखकर पहरा देने तथा सुरापान करने लगा। वह तरुणी अपने पति के प्रति प्रेम के कारण विलापवचन चिल्लाती हुई शोक प्रकट करने लगी। उसका रुदन सुननेवालों के चित्त कँपा देता था। ऐसे रुदन की आवाज सुनकर आसपास से वहाँ अन्य बंदिनियाँ दौड आईं। वे उसे देखकर शोक करने लगीं और कृत्तांत को शाप देने लगीं। उस समय कुतूहल-वश उन बंदिनियोंने तरुणी से पूछा : 'तुम लोग कहाँ के हो और कहाँ जा रहे थे ? चोरोंने तुम्हें क्यों पकडा ? उसने सिर हाथ पर रखकर कहा, "इस समय हम जो जो दुःख यातना पा रहे हैं उसके बीजसमान जो घटना है वह मैं सारी तुम्हें शुरू से ब्योरेवार बताती हूँ, सुनिए :

तरुणी का आत्मवृत्तांत

चंपा नाम की उत्तम नगरी के पश्चिम में स्थित वन के अंदरूनी भाग में गंगाप्रोचना नाम की मैं चक्रवाकी थी। वहाँ मेरे सुरतरथ का सारथि यह गंगातरंगतिलक नामधारी तरुण चक्रवाक नदी के पुलिन पर बसता था।

एक दिन वन्य हाथी के शिकार के निकले किसी व्याध ने अपने धनुष्य से छोडे हुए बाण प्रहार से वह चक्रवाक बींधकर चल बसा। पश्चात्ताप के कारण व्याध ने तट पर उसके शरीर का अग्निसंस्कार किया। पतिका मार्ग अनुसरनेवाली मैं भी उस अग्नि में प्रवेश करके जल मरी।

इस प्रकार जल मरने के बाद यमुना नदी के तट पर स्थित कौशाम्बी नाम की उत्तम नगरी में श्रेष्ठीकुल में मेरा जन्म हुआ। यह मेरा प्रियतम भी उसी नगरी में मुझ से पहले ऐसे महान सार्थवाहकुल में जन्मा था जिसकी ख्याति तीन

समुद्र पार फैली हुई है ।

चित्रपट द्वारा हम पुनः एक दूसरे को पहचान गये । उसने मेरे पिता से मेरी मांगनी की किन्तु पिता ने मुझे उसे देने से इन्कार किया ।

मैंने दूती भेजी और बाद में साँझ के समय पूर्वजन्म के अनुराग से प्रेरित हो, मैं मदनविकार से संतप्त होकर मेरे प्रियतम के घर पहुँची और बुजुर्गों के डर के कारण हम दोनों नौका में बैठकर भाग निकले । गंगा के विशाल तट पर हमें चोरों ने पकडा ।

व्याध को पूर्वभव का स्मरण

इस प्रकार उस रमणी ने रोते-सिसकते अपने सब सुख-दुःख का ब्योरा यथाक्रम उन बंदिनियों से कह सुनाया । रोते-धोते इस प्रकार उसने जो वृत्तान्त बंदिनियों को कहा वह सुनकर मुझे अपना पूर्वजन्म याद आ गया और थोडी देर मुझे मूर्च्छा आ गई ।

स्वस्थ होने पर मुझे पूर्वजन्म के मातापिता, पत्नी, कुलधर्म और चरित्र का स्मरण हो आया । याद आये हुए स्वप्न जैसा उसका वृत्तांत सुनकर मेरा हृदय वात्सल्य और करुणाभाव से कोमल बन गया । मैं मन में सोचने लगा :

"गंगा नदी के आभूषण समान यह वही चक्रवाक युगल है और जिसके चक्रवाक की मैंने अनजान में हत्या की थी । कामभोग के रसावेग से परिचित ऐसे मुझसे इस कामतृष्णाविह्वल और बडी कठिनाई से संगम प्राप्त इस युगल को पुनः हनना उचित नहीं ।

इस कारण मेरे जीवित को होड में रखकर भी मेरे पाप का प्रतिकार भले हो जाए, मैं उनको जीवन-दान दूँगा और इसके बाद परलोक सुधारने की चिंता करूँगा ।"

तरुण दंपती को जीवनदान और छुटकारा

इस प्रकार संकल्प करके, उनकी सहाय करने हेतु मैं कुटिया से बाहर निकला और उस तरुण के बंधन ढीले किये । तत्पश्चात् बख्तर से सज्ज हुआ, वेश धारण किया और कमर में छुरा बाँध लिया । वसुनंद और तलवार लेकर मैं रात के समय गुप्तता से तरुण को पत्नी के साथ पल्ली से बाहर ले गया और अत्यंत

भयंकर अटवी के पार पहुँचाया ।

जंगल के बाहर सीमान्त गाँव के निकट की भूमि तक उन्हें पहुँचाकर मैंने संसार से विरक्त होकर मन में इस प्रकार सोचा :

"यह अपराध करके चोरपल्ली में लौटना और यमदूत जैसे सेनापति का मुँह देखना मेरे लिए उचित नहीं । इष्ट सुख का लोभ जो मृत्यु समान है उसमें पडकर मैंने जो पुष्कल पाप किये हैं उनसे छुडानेवाला मोक्षमार्ग पकडना ही अब मेरे लिए श्रेयस्कर है । सुख पाने के प्रयास में जो रागमूढ मनुष्य दूसरों को दुःख में डालता है वह मूर्खता से अपने लिए भी अतिशय दुःखों का सर्जन करता है।

पत्नीरूपी कारागार से छूटकर जो प्रेमबंधन मुक्त हो जाते हैं और साथ ही अपने रागद्वेष का शमन करके जो सुखदुःख के प्रति समभाव धारण कर विहरते हैं, उन्हें धन्य है ।'ऐसा सोचविचार करके मैंने उत्तर दिशा की राह ली ।

पुरिमताल उद्यान

मेरा चित्त अब कामवृत्ति से विमुख हो गया और तपश्चर्या के सारतत्त्व को समझ गया था । मनुष्य के रक्त से रंजित तलवार और मल से मलिन ढाल का मैंने त्याग किया ।

चलता-चलता मैं पुरिमताल उद्यान आ पहुँचा जो ताडवृक्षों के घने झुंडों से सोहता था और देवलोक के सार समान अलकापुरी का अनुकरण करता था।

उसके दाहिनी ओर का प्रदेश कमलसरोवर से सुंदर लग रहा था । यह उद्यान उपवनों के सभी गुणों से भी बढचढकर आगे निकल जाता था । उसकी शोभा नंदनवन जैसी थी । वहाँ छहों ऋतुओं के पुष्प खिले हुए थे । वह फलसमृद्ध था और वहाँ चित्रसभा भी थी । कामीजनों के लिए वह आनंददायक था । वह सजल जलधर जैसा गभीर था ।

वहाँ मदमत्त भ्रमर और मधुकरियों की गुंजार और कोयल की मधुर कूक सुनाई पडती थी । पृथ्वी के सभी उद्यानों के गुण यहाँ इकट्ठे हुए जान पडते थे।

उसमें जो दोष था वह केवल एक ही था : लोगों की कुशलवार्ता के विषय में वह उद्यान भ्रमर-भ्रमरियों और कोयल के शब्द द्वारा उनकी हँसी-मजाक उडाया करता था ।

पवित्र वटवृक्ष

वहाँ मैंने एक देवमंदिर देखा । वह चूने की सफेदी से पूता होने से जलहीन बादलसमूह जैसा गौर लगता था । उसका आकार-प्रकार सिंहबैठक जैसा था और वह उत्तुंग था ।

वहाँ सौ स्तंभों पर स्थापित सुश्लिष्ट लकडीकामवाला सुंदर, विशाल एवं पर्याप्त अवकाशयुक्त प्रेक्षागृह था ।

उसके आगे के भाग में अनेक चित्रभातों के सुशोभनयुक्त, चैत्ययुक्त ऊँची व्यासपीठ और पताकायुक्त वटवृक्ष को मैंने देखा ।

उस वृक्ष को छत्र, चामर एवं पुष्पमालाएँ समर्पित किये हुए थे और चंदनलेपनभी किया गया था । वह वटवृक्ष उद्यान के अन्य वृक्षों का आधिपत्य करता था ।

ऋषभदेव का चैत्य

देवमंदिर की प्रदक्षिणा करके मैंने कोमल पत्रशाखाओं और पर्णघटा की सुखद छायायुक्त उस वटवृक्ष को प्रणिपात किया । इतना करने के बाद मैंने वहाँ के लोगों से पूछा, "इस उद्यान का नाम क्या है ? किस देव की यहाँ सुचारु रूप से पूजा हो रही है ?

बहुत कुछ निरीक्षण करने पर भी मुझे यहाँ भवनसमूह कहीं आसपास दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त मुझे यह उद्यान इससे पूर्व कभी देखने में नहीं आया ।

इससे उन्होंने जाना कि मैं अभ्यागत हूँ तब उनमें से एक व्यक्ति ने मुझे बताया, "इस उद्यान का नाम शकटमुख है । अनुश्रुति यह है कि इक्ष्वाकु वंश का राजवृषभ, वृषभ समान ललित गति से चलनेवाला वृषभदेव भारतवर्ष में पृथ्वीपति था । उस हिमवंत वर्ष के स्वामी ने मंडलों रूप वलययुक्त, गुणों से समृद्ध और सागररूप कटिमेखला मंडित पृथ्वीरूप महिला का त्याग किया था। गर्भवास और पुनर्जन्म से भयभीत होकर पुनः जन्म लेने से बचने के लिए उसने उद्यत होकर असामान्य, पूर्ण एवं अनुत्तर पद की प्राप्ति की कामना की ।

लोकश्रुति है कि सुर-असुरों से पूजित ऐसे उन्हें वे जब इस वटवृक्ष के

तले बैठे थे तब उत्तम एवं अनंत ज्ञान तथा दर्शन हुआ था। इसलिए उस लोकनाथ की आज भी महिमा की जाती है और भवक्षयकर्ता उनकी इस देवमंदिर में प्रतिमा प्रतिष्ठित की हुई है।

श्रमणदर्शन : प्रव्रज्याग्रहण की इच्छा

यह सब सुनकर मैंने वट एवं प्रतिमा को वंदन किया। वहाँ निकट ही बैठे उत्तम गुणनिधि एक श्रमण को मैंने देखा।

वे चित्त में पाँचों इन्द्रियों को स्थापित कर के स्वस्थ एवं शांत भाव से बैठे थे और उन्होंने आध्यात्मिक ध्यान एवं संवर में अपना चित्त जोडकर एकाग्रता से उसका निरोध किया था।

उन निष्पाप हृदय के श्रमण के पास जाकर मैंने उनके चरण पकड लिए और संवेग से स्मितपूर्वक हाथ जोडकर मैं बोला :

"हे महायशस्वी, मैं मान-क्रोध से मुक्त, हिरण्य एवं स्वर्ण से रहित, पापकर्म के आरंभ से निवृत्त हो गया हूँ। मैं आपकी शुश्रूषा करने के लिए तत्पर होकर आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। मैं जन्म-मृत्यु के भंवरवाले; वध, बंधन और व्याधियों रूप मगरों के शिकारक्षेत्र जैसा संसाररूप महासागर आपकी नौका का आधार लेकर तर जाना चाहता हूँ।"

यह सुनकर उन्होंने कर्ण एवं मन को शांतिदायक वचन कहे : "श्रमण के गुणधर्म जीवन के अंत तक निभाना दुष्कर है। कन्धों पर अथवा मस्तक पर बोझ ढोना आसान है, किन्तु शील को निरंतर पालने का व्रत सतत निभाना महा कठिन है।"

अतः मैंने उन्हें फिरसे कहा, "दृढनिश्चयी पुरुषार्थी के लिए धर्म के अथवा काम के विषय में कोई बात दुष्कर नहीं। मैं उस प्रकार का पुरुषार्थ करने और आज ही सैकडों गुणमय, सर्व दुःखों को मिटा देनेवाली उग्र प्रव्रज्या लेने को तत्पर हूँ।"

प्रव्रज्याग्रहण : श्रमणजीवन की साधना

मेरा यह निश्चय जानकर उन्होंने मुझे सब प्राणियों के लिए हितकारी, जरा एवं मृत्यु से छुटकारा दिलानेवाले पाँच महाव्रतों के गुणों से युक्त धर्म में स्थापित किया।

प्रत्याख्यान, विनय, स्थान एवं गमन से संबंधित प्रतिक्रमण और भाष्य-अभाष्य आदि सब क्रमशः उन्होंने मुझे सिखाया ।

समय बीतने पर मैंने मोक्षमार्ग के सोपान समान और आचार के स्तंभरूप उत्तराध्ययन के छत्तीसों अध्ययनों का संपूर्ण ज्ञान आत्मसात् किया ।

ब्रह्मचर्य के रक्षक समान आचारांग के नौ अध्ययनों का और बाकी के आचारांग श्रुतस्कंध का ज्ञान भी प्राप्त किया । इस प्रकार निर्वाण तक पहुँचने के मार्ग समान सुविहित शास्त्र आचारांग का मैंने सांगोपांग ज्ञान ग्रहण किया।

इस के पश्चात् मैंने सूत्रकृतांग, स्थानांग और समवायांग पूरे सीखे और बाकी के अंग-प्रविष्ट कालिक श्रुत को भी ग्रहण किया ।

जिनमें सर्व नयों का निरूपण किया गया है ऐसे विस्तृत नौ पूर्वों को भी जाना तथा सब द्रव्यों के भाव एवं गुण विषयक विशिष्टता को भी समझ लिया।

इस प्रकार श्रमणधर्म के आचरण में दृढ रहकर मैं पृथ्वी पर विहार करने लगा और मान-अपमान के प्रति समता रखकर बारह वर्ष से भी अधिक समय बिताया । मेरी श्रद्धा निरंतर बढती जा रही है और यथाशक्ति में संयमपालन करता रहता हूँ। इस प्रकार में भावित चित्त से इस समय उत्तम धर्मकामना कर रहा हूँ।

वैराग्य

तरंगवती और उसके पति में वैराग्यवृत्ति का उदय

इस प्रकार श्रमण का वृत्तांत सुनकर हमको अपने पूर्ववृत्तांत का स्मरण हो आया । इससे उस समय हमने भुगते दुःख मुझे पुनः याद आये ।

अश्रुपूर्ण दृष्टि से हमने एकदूसरे की ओर देखा : 'अरे !यह तो वही व्यक्ति !' इस प्रकार हम उसे तब पहचान गये - मानो विष का अमृत हो गया।

यह व्यक्ति जो इतना क्रूरकर्मी था तथापि वह संयमी बन सका, तो हम भी दुःख का क्षायक तपाचरण करने के योग्य हैं ।

दुःख के स्मरण से कामभोग से हमारा मन उचट गया और उस श्रमण जो समाधिस्थ होने के प्रयत्न में था उसके चरणों में गिरे ।

इसके बाद खड़े होकर सिर पर अंजलि रचकर हमने उस समय के बंधु

समान और जीवनदान देनवाले श्रमण से कहा : "उन दिनों पूर्वभव में जो चक्रवाकयुगल था और इस भव में जिस दंपती को आपने चोरपल्ली से बाहर निकालकर जीवनदान दिया था, वे हम स्वयं ही हैं। जिस प्रकार उस समय आपने हमारे दुःख का अंत किया था उस प्रकार अब पुनः भी आप हमें दुःखमुक्ति प्रदान कीजिए ।

जन्ममृत्यु के आवागमन में फँसे रहने के कारण अनेक दुःखपूर्ण और अनित्य ऐसे संसारवास से हम भयभीत हुए हैं ।

विविध तप एवं नियम का पाथेय के साथ जिनवचनों के सरल मार्ग पर चलकर निर्वाण को पहुँचने के लिए हम उत्सुक हुए हैं और आपका अनुसरण करना चाहते हैं ।"

श्रमणदत्त हितशिक्षा

हमारी यह बिनति सुनकर सुज्ञ श्रमण ने कहा : 'जो निरंतर शील एवं संयम का पालन करेगा वह सब दुःखों से सत्वर मुक्त हो जाएगा । यदि तुम भी सैकडों जन्म-परंपरा में फँसने की अधोगति के अनुभवों से बचना चाहते हो तो पापकर्म का त्याग और संयम का निरंतर पालन करो ।

मृत्यु अटल होने की बात से हम विदित हैं, परंतु हम यह नहीं जानते कि वह कब आएगी । इसलिए वह तुम्हारे जीवन का अंत कर दे इससे पूर्व तुम धर्माचरण करो यही इष्ट है ।

मनुष्य जब कष्ट से श्वास भी ले सकता न हो, प्राण गले में अटके हों, सुध-सान खो बैठा हो तब उस मरणासन्न व्यक्ति के लिए जटिल तपश्चर्या करना अशक्य है ।

आयुष्य निरन्तर कम होता रहता है । पाचों इन्द्रियों को सहर्ष फिरा देने वाला ही सुगति के पथ पर विचरण करने योग्य है । सत्कार्य में अनेकों विघ्न आते हैं और इस जग में जीवित परिणामी एवं अनित्य है, इसलिए धर्माचरण के कर्तव्य में श्रद्धा बढाते रहना चाहिए ।

जिसे मौत दबोच नहीं सकती, जो कदापि दुःख प्राप्त करेगा ही नहीं, वह जीव तप एवं संयम भले ही न करे ।

परंतु मृत्यु अटल है, किसी भी क्षण चल बसना हो सकता है, इसलिए लोग संयम का प्रकाश प्राप्त करके सांसारिक दुःखपूर्ण गति से मुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यह कि दुःख भी अवश्यंभावी हैं और जीवन चंचल होने के कारण मनुष्य को सदैव धर्माचरण में बुद्धि रखनी चाहिए।

प्रव्रज्याग्रहण के लिये तत्पर : परिचारकों का विलाप

इस प्रकार के उस सुधर्मा साधु के वचन सुनकर, आयुष्य की चंचलता से खिन्न होकर तपश्चर्या का प्रारंभ करने को उत्साही ऐसे हम दोनों मुदित-मन हुए।

हमने सेवकों के हाथों में सब आभूषण रख दिये और कहा : 'ये ले जाओ और हम दोनों के मातपिता से कहना कि अनेक जन्मों के परिभ्रमण से उद्विग्न और दुःखों से भयभीत बने हुए हम दोनों ने श्रमण-जीवन अंगीकार कर लिया है। और साथ ही यह भी कहना कि उनके प्रति विनय बरतने में तथा अन्य किसी प्रकार जो कोई स्थूल या सूक्ष्म दोष किया हो और मद एवं प्रमाद में हमसे जो कुछ न करने योग्य कदाचित् हो गया हो, उन सबको क्षमा कर देना।"

यह सुनकर सेवक-सेविकाओंने सहसा दुःख से रोदन-क्रंदन मचा दिया। परिजन के साथ नाटक खेलनेवाली दौड आईं।

हम जो करने को उद्यत हैं वह बात सुनकर वे मेरे प्रियतम के पाँव पडकर कहने लगीं, "हे नाथ! हम को अनाथ छोड़कर मत जाइए।" हे गृहस्वामिनी मेरे प्रियतम के पैरों में गिरकर उसे रिझाने के लिए अलकावलियों से गिरे पुष्पों के पुंज से मानो बलिकर्म किया।

"तुम्हें अनायास क्रीडाए एवं स्वेच्छाप्राप्त मनमाना सुरतसुख सर्वदा सुलभ हैं। तुम्हारे आवास में यद्यपि हमें कदापि रतिसुख का लाभ नहीं मिलता तो भी हम अपने नेत्रों से हर-हमेश तुम्हें देखने की चाह करती हैं। जो प्रफुल्ल कुमुद जैसा श्वेत और कुमुद-शोभा का कारण है, वह पूर्ण कलामंडल सहित निर्मल चंद्र यद्यपि अस्पृश्य है तथापि किसको प्रीतिदायक नहीं लगता ?"

केशलुंचन : व्रतगहण

ऐसे अनेक करुण विलापवचन कहकर उन स्त्रियोंने प्रियतम को तपश्चर्या

के संकल्प में से डगमगाने के लिए बाधा खडी करने का प्रारंभ किया । परन्तु मन को विचलित करनेवाले उस करुण विलाप के विघ्न की प्रियतमने उपेक्षा की ।

आयुष्य सतत गतिमान होने के कारण जो मनुष्य पाँचो इन्द्रियों को सहर्ष विषयों से विमुख कर लेता है, उसकी ही सुगति के पथ पर चलने की योग्यता होती है । भोग के प्रति विरक्त और परलोकसुख-प्राप्ति के साधन ऐसे धर्म में अनुरक्त, वैराग्यवृत्ति से ओतप्रोत और प्रव्रज्या ग्रहण करने के निश्चयी उसने सब विघ्नों की अवगणना करके अपने पुष्पमिश्रित केश लोच डाले ।

मैंने भी स्वयं केशलुंचन करके मेरे प्रियतम के साथ उन श्रमण के चरणों में पडी और बोली, "मुझे दुःखों से मुक्ति दिलवाने की कृपा करें ।"

तब उसने हमको यथाविधि सामायिक व्रतग्रहण करवाया, जिसका एक बार किया गया स्मरण भी सद्गति की ओर प्रगति कराता है । उसने हमें प्राणिवध, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह एवं रात्रिभोजन से विरमने का नियम ग्रहण करवाया । जन्ममृत्यु का शिकार बनते इस शरीर से बंधे रहना हम भी नहीं चाहते थे इसलिए तपश्चर्या की लालसा से आठ उत्तरगुण भी ग्रहण किये ।

स्वजनों का आगमन

परिजनों से समाचार प्राप्त होते ही उस समय हमारे दोनों के माता-पिता अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ आ पहुँचे । हे गृहस्वामिनी ! हमने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली यह सुनकर नगरी के पुरुष एवं स्त्रियाँ, बच्चे एवं बूढे उद्विग्न होकर वहाँ आने लगे । हमारे रिश्ते-नातेवालों से तथा हमें देखने आनेवालों से वह विशाल उपवन भर गया ।

वहाँ जमी भीड में लोगों के शरीर ढक गये होने से केवल मुख-मस्तक की पंक्तियाँ ही पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती थीं । प्रव्रज्या लेने की तत्परता की भावोर्मि से शोभायमान लगते हमको देखकर बांधव एवं मित्रवर्ग अत्यंत शोकान्वित बन गये । हमारे दोनों के मातापिता रोते बिसूरते दौडते-गिरते आये । मेरे सास-ससुर हमको देखते ही मूर्छित हो गये ।

श्रेष्ठी द्वारा रोक-थाम और अनुमति

जिनवचनों से प्रभावित बुद्धि जिनकी है, संसार के स्वरूप से जो विज्ञ हैं ऐसे मेरे मातापिता आँसूप्रवेग थामकर मुझसे कहने लगे, "बेटी ! यौवन के उदयकाल में ही ऐसा साहस क्यों किया ? तरुणवय में श्रमणधर्म का पालन बहुत कठिन है । इसके कारण कदाचित् तुमसे धर्म की कोई विराधना हो जायगी । कामभोग भोग लो इसके बाद भी तप का प्रारंभ किया जा सकता है ।"

उन्हें आश्वस्त करते हुए मैने कहा, "भोगों का सुख क्षणिक है और फल उसका कटु होता है । कुटुंबजीवन अतिशय दुःखमय होता है । मुक्तिसुख से बढकर कोई सुख नहीं । विषयों से हम जबतक मुक्त न हो जायें, संयमपालन का हममें जबतक शरीरबल है और जबतक मृत्यु आकर हमें उठा न ले जाये तबतक हमारे लिए तपाचरण ही इष्ट है ।

यह सुनकर पिताने आशिष-वर्षा की । 'इन्द्रियों रूप डाकुओं से तारुण्य घेर लिया होने के कारण तुम इस संसारसागर को निर्विघ्न तर जाओ ।'

सार्थवाह का अनुनय

हमारे बाँधवों ने हम दोनों को आश्वासन एवं अभिनंदन दिया । इतने में मेरे सास-ससुर मेरे प्रियतम से विनयपूर्वक-मनाने लगे, 'बेटे ! किसीने तुम्हें कुछ अनुचित कह दिया ? यहाँ तुम्हें किसी बात की कमी है ? तुम्हें हमारा कोई अन्याय-अपराध दिखाई पडा ? - जिसके कारण मन खट्टा हो जाने से तुमने प्रव्रज्या ग्रहण की ?

धर्म का फल स्वर्ग है । स्वर्ग में यथेष्ट भोग प्राप्त होते हैं और लौकिक श्रुति है कि विषयसुख का सार सुंदरी है । परन्तु तुम्हें तो इस धरती पर ही अप्सरा समान सुंदरियाँ प्राप्त हैं । इसलिए प्रथम कामभोग का आनंद उठा लेने पर बाद में तुम धर्म में प्रवृत्त हो जाना ।

बेटे ! हम दोनों को, तथा राजसुलभ सुख एवं वैभव को, इस बेटी को एवं हमारे सारे विपुल धनभंडार को तुम क्यों त्याग रहे हो ?

तुम कुछ वर्ष कुछ भी चिंता - व्यग्रता किये बिना कामभोग भोगना उसके बाद पाकी वय में उग्र श्रमणधर्म का आचरण करना ।'

सार्थपुत्र का प्रत्युत्तर

मातापिता ने इस प्रकार के करुण वचन जब कहे । तब प्रव्रज्या के दृढनिश्चयी सार्थपुत्र ने एक दृष्टांत सुनाया :

जैसे कोये के भीतर का अज्ञानी कीडा अपना शारीरिक हित चाहता है तथापि स्वयं तंतुओं के बँधन में बँध जाता है वैसे ही मोहवश मुग्धबुद्धि मनुष्य विषयसुख की चाह में स्त्री की खातिर सैकडों दुःख एवं रागद्वेष से अपने आपको बाँध देता है ।

इसके फलस्वरूप रागद्वेष एवं दुःख से अभिभूत हो कर मिथ्यात्व से घिरकर वह अनेक योनियों में जन्म पाने की गहनतावाले संसाररूप वन में उलझ जाता है ।

प्यारी पत्नी की प्राप्ति से उतना बहुत सुख नहीं मिल जाता, जितना - अरे! उससे भी कई गुना अधिक - दुःख उस स्त्री के वियोग से उसे होता है।

इसी प्रकार धन पाने में दुःख, प्राप्त धन की सुरक्षा में दुःख और उसका नाश होने पर दुःख होता है-इस प्रकार धन सभी प्रकार से दुःखदायक है ।

माँ-बाप, भाई-भौजाई, पुत्र-बाँधव एवं मित्रगण - वे सब निर्वाणपथ के पथिक होने से स्नेहशृखलाएँ ही हैं ।

जिस प्रकार कोई सार्थ के रूप में प्रवासी मनुष्य संकटपूर्ण मार्ग से गुजरते समय उनसे सहायता पाने के लोभ से साथ के अन्य लोगों की रक्षा जागकर करता है, परंतु जंगल पार होने पर साथ छोड़कर अपने-अपने निवास के जनपद में जाने के लिए अपने-अपने मार्ग चलते बनते हैं, उसी प्रकार यह लोकयात्रारूप जीवन भी एक प्रकार का प्रवास ही है ? सगे-स्नेहीजन केवल अपने-अपने सुख-दुःख की देखभाल करने की युक्ति के रूप में यहाँ स्नेहभाव जताते हैं ।

संयोग के बाद वियोग प्राप्त करके बाँधवों को त्यागकर वे सब अपने कर्मों के उदयानुसार अनेक प्रकार की विशिष्ट गतियाँ पाते हैं । नित्य बंधनकर्ता एवं विषलिप्त राग त्याग देना और वैराग्य को मुक्तिमार्ग जानना चाहिए । इस प्रकार से जब धर्मबुद्धि जाग्रत हो आए तब योग्य मुहूर्त के लिए प्रतीक्षा किये बिना, प्रव्रज्या ले लेना चाहिए, अन्यथा काल सहसा आयुष्य का अंत करने में देर नहीं करता।

इस प्रकार परमार्थ एवं निश्चय-नय के जानकार यत्नशील और किसी बात में आसक्त न होनेवाले के लिए मोक्षप्राप्ति सरल बन जाती है।

आपलोग कुछ वर्ष कामभोग कर लेने की बात जो कहते हैं, उसमें यह आपत्ति है कि सहसा आ धमकते मृत्यु का भय संसार में हमेशा जीव पर मंडरा रहा है। विश्व में ऐसा कोई नहीं जिसमें मृत्यु को रोकने का सामर्थ्य हो। इसलिए काल के उचित - अनुचित होने का विचार किये बिना ही शीघ्र प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहिए।

अनिच्छा से सार्थवाह की अनुमति

ऐसे अनेक वचन कहकर सार्थवाहपुत्र ने उस समय मातापिता एवं अन्य स्वजनों के विरोध का निवारण किया। बचपन में जिनके साथ धूल में खेला था उन विवेकी मित्रों का विरोध भी शांत करके प्रव्रज्या लेने को तत्पर उसने सबको निराश किया।

हे गृहस्वामिनी ! इस प्रकार हम दोनों तपचरण के लिए यद्यपि दृढ थे तथापि तीव्र पुत्रस्नेह के वश होकर सार्थवाह ने हमें जाने देना न चाहा। इसलिए अनेक लोगों ने उन्हें समझाया कि -

'प्रियजनों के वियोग और जन्म-मृत्यु की असह्यता वगैरह भयों से डर खा गए इन दोनों को उनकी इच्छानुसार तपाचरण करने दो। जिसका मन कामोपभोग से विमुख हुआ है और जो तपश्चर्या करने के लिए अधीर हो गया है उसको बाधक बननेवाला व्यक्ति मित्र के रूप में शत्रु का काम करता है।'

इस प्रकार लोगों के वचनों का कोलाहल मच गया। यह देखकर सार्थवाह ने हमें प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति प्रदान की। हाथ जोडकर उन्होंने हमसे कहा :

'विविध अनेक नियम एवं उपवास के कारण कठिन ऐसे इस श्रमणधर्म को भलीभाँति निभाना।

जन्म-मृत्यु के तरंगवाले, अनेक योनियों के भ्रमणरूप भँवरोंवाले, आठ प्रकार के कर्मसमुहरूप मलिन जलराशिवाले, प्रियजनों के वियोगविलापरूप गर्जनवाले, रागरूप मगरों से भरपूर इस विशाल संसारसमुद्र को तुम तर जाओ ऐसा

तपाचरण करना ।'

इस प्रकार आशिष देकर नगर में लौटना चाहते गुणवान सार्थवाह ने हमें पाँवों पडने को विवश कर दिया ।

सब स्वजन की बिदा

श्रेष्ठी ने भी कहा, 'जो लोग सच्चे धर्म एवं तप का आचरण स्वीकार करते हैं, अनेक दुःखों से पूर्ण कुटुंब को छोड चल पडते हैं, प्रेमशृंखला से मुक्त हो जाते हैं, रागद्वेष का शमन कर के, सुखदुःख के प्रति समभाव पुष्ट कर के क्षमावान मुनि बनते हैं, पत्नीरूप कारागार के बंधनों से छुटकारा पाते हैं, मान एवं क्रोध का त्याग करके जिन-उपदिष्ट धर्माचरण करते हैं, वे धन्य हैं ।

यथेच्छ विषयसुख भोगने में हमारा चित्त लगा है इसलिए मोह की बेडियों में हम जकडे हुए हैं और संसारत्याग करके चल निकलने के लिए अशक्त हैं ।'

धर्म का सच्चा स्वरूप जिसे यथातथ विदित हुआ था ऐसे श्रेष्ठी ने उस समय तप एवं नियमपालन की वृत्ति को तीव्रतर करनेवाली इस प्रकार की अनेक बातें कहीं ।

मेरे ससुर एवं पीहर से संबंधित स्त्रियाँ इस प्रकार शोकग्रस्त होकर रुदन करने लगीं जैसे कि हम एक देह छोडकर दूसरी देह धारण कर रहे हों। दुःखी होकर अत्यंत करुण क्रंदन करती उन स्त्रियों की अश्रुवर्षा से वह उपवन की धरती मानो प्लावित हो गई ।

तत्पश्चात् श्रेष्ठी एवं सार्थवाह रोते-रोते स्त्रियों, मित्रों, बंधुओं एवं बालबच्चों के साथ नगरी में लौटे ।

लोगों के कोलाहल के बीच, कुतूहल से देखने वालों की भीड से घिरे हुए उस श्रमण के दर्शन, जिनकी दृष्टि हमारें पर केन्द्रित थी, श्रेष्ठि ने विषादपूर्ण चित्त से किये ।

अन्य सब संबंधी भी हमने किये इतनी सारी समृद्धि का त्याग को देखकर विस्मित हुए । धर्म के प्रति अनुराग में वे भी रंग गए और जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार लौट गये ।

सुव्रता गणिनी का आगमन : तरंगवती को सौंपना

इसके बाद श्रमणलक्ष्मी से विभूषित, मूर्तिमती क्षमा जैसी एक गुणशील गणिनी उस श्रमण को वंदन करने आई । तप, नियम एवं ज्ञान से परिपूर्ण वह गणिनी आर्या चंदना की शिष्या थी । उसने शास्त्रज्ञ श्रमण और उसके परिवार को वंदन किया । शास्त्रविधि के जानकार उस श्रमण ने गणिनी से कहा, 'हे पापशमनी श्रमणी ! यह तुम्हारी शिष्या हो ।'

उसने यह सुनकर मार्दव गुण जतानेवाला और श्रमणत्व के उपकार समान विनयाचार करके अपनी संमति प्रदर्शित की ।

इसके बाद श्रमण ने मुझसे कहा, 'पाँच महाव्रतधारिणी दृढ व्रतिनी यह सुव्रता गणिनी तुम्हारी प्रवर्तिनी आर्या है, तुम उसको वंदन करो ।'

इस आज्ञा के पालन के लिए मैंने मस्तक पर हाथ जोडे, विनय से शीश नवाकर, निर्वाण पहुँचने के लिए आतुर ऐसी मैं उसके पाँव पडी । मन से प्रत्येक विषय को स्पष्ट ग्रहण कर लेती उस श्रमणी ने मुझे इस प्रकार आशिष दी :

'इस उत्तम, परंतु कठिन आचरणवाले श्रमणजीवन को तुम सफलता से पार करो । हम तो केवल तुम्हारे धर्ममार्ग के उपदेशक हैं । तुम यदि उस प्रकार आचरण करोगी, तो मोक्षमार्ग पर ले जानेवाला कल्याण तुम पाओगी ।'

इस प्रकार आशिष-प्रदान हो जाने के बाद उस प्रशस्त श्रमणी को मैंने कहा, "जन्म-मृत्यु के आवागमन की परंपरा के कारणरूप संसार की रहनी से भयभीत मैं तुम्हारी आज्ञा अवश्य मानूँगी ।"

गणिनी के साथ नगरप्रवेश : शास्त्राध्ययन और तपश्चर्या

इसके बाद उत्तम तप एवं संयम के मार्गप्रदर्शक उस श्रमण को मैंने विनय से सकुचाते हुए वंदन किये ।

इसके बाद कामवृत्ति से मुक्त हुए उस सार्थवाहपुत्र को वंदन करके मैंने श्रमणी के साथ नगरी में प्रवेश किया ।

वहाँ उस आर्या के साथ विहार के योग्य अनेक अचित्त प्रदेशयुक्त और स्त्रियों के घूमने-फिरने योग्य ऐसे कोष्ठागार में अनासक्त होकर मैं गई ।

उस समय स्वर्ण के गोले जैसा गगनतिलक सूर्य पश्चिम संध्या पहुँचा। उस स्थान में गणिनी के साथ मैंने आलोचन, प्रतिक्रमण एवं दुष्कर्मनिंदा आदि किये। धर्मानुराग में ओतप्रोत हो जाने के कारण मुझे रात कब बीत गई इसका पता भी न चला।

दूसरे दिन सार्थवाहपुत्र उन श्रमणश्रेष्ठ के साथ धरती पर अस्थिर निवास करता हुआ विहार कर गया।

हे गृहस्वामिनी ! उस गणिनी से मैंने दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त की। मैं तपश्चर्या एवं अनुष्ठान में निरत होकर वैराग्यभाव पा लिया। विधिपूर्वक विहार करते हुए हम यहाँ आ पहुँची और आज छठ का पारना करने के लिए मैं भिक्षार्थ निकली हूँ।

वृत्तांत-समापन : श्रोताओं में वैराग्यभाव

आपने मुझसे पूछा इसलिए इस प्रकार मैंने जो भी सुखदुःख की परंपरा का इसलोक एवं परलोक में अनुभव किया, वह सारी कह सुनाई।

इस प्रकार उस तरंगवती श्रमणी ने जब अपना वृत्तांत कह दिया तब वह गृहस्वामिनी यह सोचने लगी, 'अहो ! इसने कितना कठिन कार्य किया ! इतनी तरुण वय में अत्यधिक देहसुख एवं वैभव होते हुए भी उसे छोड़कर यह ऐसा दुष्कर तप कर रही है !'

इसके बाद उस सेठानीने कहा, 'हे भगवती ! आपने अपना आत्मवृत्तान्त कहकर हम पर बडा अनुग्रह किया। आपको कष्ट पहुँचाया इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।' इस प्रकार कह लेने के बाद दूस्तर भवसागर से भयभीत हुई वह उस श्रमणी के चरणों में पडकर बोली, 'विषयपंक में ग्रस्त हम लोगों का क्या होगा ? हे आर्या ! प्रथम बात यह कि हम मोहग्रस्त हैं और दूसरी ओर आपकी चर्या अत्यंत दुष्कर है। तथापि आप हमको ऐसा कुछ उपदेश दीजिए जिससे हमारा संसारभ्रमण रुक जाए।'

तब तरंगवतीने कहा, 'यदि तुम संयमपालन न कर सकती हो तो जिनवचन में श्रद्धा दृढ रखकर गृहस्थधर्म का पालन करो।'

आर्या का अमृतसत्त्व समान वचन सुनकर उन स्त्रियों ने उसे अनुग्रह

मानकर सहर्ष हृदय में धारण किया। इस प्रकार धर्मबुद्धि पाने से संवेग में श्रद्धा दृढ हुई और उन्होंने शीलव्रत एवं गुणव्रत लिये।

वे जीव, अजीव आदि जैनशास्त्र में वर्णित पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके शुभाशययुक्त हुईं और उन्होंने शीलव्रत एवं अणुव्रत धारण करके हृदयस्थ किये।

अन्य सब तरुणियाँ भी यह सारी कथा सुनकर जिनवचन में दृढ श्रद्धायुक्त हुईं और संवेग भाव धारण करने को तत्पर हुईं।

संयम, तप एवं योग के गुण जिसने धारण किये थे वह आर्या भी अन्य छोटी श्रमणियों के साथ वहाँ से अचित भिक्षा लेकर, जहाँसे आई थी वहाँ लौट गई।

ग्रंथकार का उपसंहार

बोध देने के उद्देश्य से यह आख्यान आपके सामने कहा है। आपका समूचा दूरित दूर हो और आपकी भक्ति जिनेन्द्र में दृढ हो।

संक्षेपकार का उपसंहार

यह कथा हाईयपुरीय गच्छ के वीरभद्रसूरि के शिष्य नेमिचंद्रगणि के शिष्य यश ने लिखी है।

★ ★ ★

Dr. Pritam Singhvi has been researching in Jainology. She is author of several works like 'Hindī Jain Sāhitya mein Krishna Kā Ṣvarūp-vikās.' Samaktvayog : Ek Samanvay Driṣṭi' 'Anekānta-vāda as basis of Equanimity, Tranquality and Synthesis of Opposite-View-points'. 'Aṇupehā, 'Āṇaṃda' and 'Dohā Pāhud'.

Pārśva International Series

१.	बारहक्खर-कक्क of महाचंद्र मुनि Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi	1997
२.	गाथामंजरी Ed. H. C. Bhayani	1998
३.	अणुपेहा Pritam Singhvi	1998
४.	अनेकान्तवाद Pritam Singhvi	1999
५.	सदयवत्स-कथानक of Harṣavardhanagaṇi Ed. Pritam Singhvi	1999
६.	आणंदा of आनंदतिलक Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi	1999
७.	दोहापाहुड Ed. H. C. Bhayani, R. M. Shah, Pritam Singhvi	1999